वर्ष ६, अंक ११

श्रीकृष्णाय नमः

श्रावण पूर्णिमा १९८९

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

श्रीसीता-राम

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः । नेतुमर्हसि काकुत्स्थ ! समानसुखदुःखिनीम् ॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, श्रावण पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक ११ पूर्ण संख्या ७१

वेदोपदेश

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापति।
प्रजापति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥ १ ॥

देश में अध्यापक ब्रह्मचर्य युक्त होना चाहिये। प्रजा का पालन करने वाले राजा और राज पुरुष ब्रह्मचारी होने चाहियें। इस प्रकार का राजा विशेष प्रकार से चमकता है। इस प्रकार चमकने वाला और इन्द्रियों को वश में रखने वाला राजा इन्द्र होता है॥ १ ॥

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

बड़े बल वाला बुड्ढा न होने वाला सहस्रों नेत्रों वाला सात किरणों वाला काल रूपी अवश्य चलता है। उसके चक्र सब गोल हैं, सब भुवन हैं ज्ञानी दूरदर्शी उस पर चढ़ते हैं॥ २ ॥

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतंन्वक्षः।
स इमा विश्याभुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः॥ ३ ॥

यह काल सात चक्रों को चलाता है इसके सात नाभि हैं। इसका चक्र दण्ड अमरपन है। वह इन सब भुवनों को प्राप्त करता है। वह काल निश्चय से पहिला देव समझा जाता है॥ ३॥

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥ ४॥

यदि गौका वध करोगे यदि घोड़े का वध करोगे तो तुमको हम सासे से मार डालेंगे जिससे हमारे अन्दर निर्बलों का हनन करने वाला तू हो गया वैसा कोई भी न हो सके॥ ३॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा॥ ५॥

वह हमारा पिता है। उत्पन्न कर्ता है! और वह भाई है। सब भुवन और सब स्थान वह जानता है जो देवताओं का यश धारण करता है और जो एक ही है। उसके पास प्रश्न पूछने के लिए सब भुवन मिल कर जाते हैं॥ ५॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी)

दास्यनिष्ठा।

सर्वभूतेषु यः पश्येत् हरिमेकं परात्परम्।
हरौ यस्य हरा प्रीतिः तं भक्तं प्रणमाम्यहम्॥

मंसाराम-महाराज! सूक्ष्मदर्शी सन्त महात्माओं का कथन है कि भगवद्दास भगवत्स्वरूप ही होते हैं, इन दोनों में किंचित् भी भेद नहीं है और अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी भगवद्भक्तों का तो यह कथन है कि भगवद्भक्तों की महिमा भगवत् से भी बढ चढ कर है क्योंकि भगवत् का दर्शन तो किसी विरले ही को होता है और भगवद्दास तो लोक कल्याणार्थ सर्वत्र, सर्वदा विचरते ही रहते हैं और जिनके ऊपर उनका अनुग्रह हो जाता है, उसे तुरन्त ही भगवत् प्राप्ति होजाती है। भगवान् का स्वयं वचन है कि मैं अपने दासों के आधीन हूं, जब जिसके आधीन भगवत् हैं, वे भगवद्दास भगवत् से बढकर हुएही।

भगवान् लंका में समुद्र का सेतु बाँध कर गये थे और हनुमान जी समुद्र लांघ कर ही लँका में जा कूदे थे, इससे भक्तदासों की महिमा भगवत् सेभी अधिक सिद्ध होती है, इस लिये आज मैं आप से दास्यनिष्ठा के सम्बन्ध में सुनना चाहता हूं, कृपया मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये।

मस्तराम-(प्रसन्न होकर) भाई! दास्यनिष्ठा की महिमा कौन वर्णन कर सकता है? कोई भी वर्णन करने को समर्थ नहीं है। संसार सागर से उद्धार करने के निमित्त दास्यनिष्ठा से बढ़कर अन्य अवलम्बन नहीं है, इस में किंचित भी सन्देह नहीं है। यद्यपि भगवत्प्राप्ति के लिये अन्य भी बहुत सी निष्ठायें हैं, परन्तु सब निष्ठाओं का पर्यवसान इसी निष्ठा में है। यद्यपि सखानिष्ठा और वात्सल्य निष्ठा इन दोनों में दास्यभाव प्रकट मुख्य नहीं प्रतीत होता, तो भी जब मूल अभिप्राय पर दृष्टि की जाती है, तो वास्तव में दोनों निष्ठाओं का मूल दास्य निष्ठा है। सखा और वात्सल्य भाव केवल मन की रुचि से चित्त के लगाने के लिये है, उनके मंत्रों का साक्षात् अर्थ शरण होना और दास्यभाव निकलता है, इसलिये वे दोनों निष्ठायें दास्यनिष्ठा से मिली झुली ही हैं। भागवत् में ब्रह्मा जी का वचन है कि तब तक ही द्वैत, सुख और दुःख इस मनुष्य की बुद्धि को चुराने वाले हैं, जब तक की घर कारागार है और तभी तक मोह रूप अज्ञान पांव की बेड़ी है, जब तक मनुष्य भगवत् का दास नहीं होता, भगवत् का दास हुये पीछे विश्व भर सुख शान्तिमय हो जाता है। और भी कहा है कि जिन भगवत् के नाम लेने और सुनने से मन निर्मल हो जाता है, उन भगवत् के दास होने से कौनसी उत्तम पदवी नहीं मिल सकती, सभी मिल सकती हैं। इस प्रकार के हजारों वचन पुराण और इतिहासों में विख्यात और प्रसिद्ध हैं।

हे मंसाराम! दास्यनिष्ठा ऐसी सहज है कि सभी को प्राप्त है। जिस किसी से पूछो, वह अपने को ईश्वरदास और ईश्वर को स्वामी बताता है। ऐसा कहना सब छोटों बड़ों के मुख से सामान्य, स्वाभाविक है। किसी २ ने शरणागति को दास्य-निष्ठा से अलग जो वर्णन किया है, उसका कारण यह है कि दास तो दास्यता और सेवा करने में विवश और पराधीन है, क्योंकि सर्वावस्था में दास को अपने स्वामी की सेवा करनी भी उचित और मुख्यतर है। शरणागत अर्थात् शरण में आया हुवा यद्यपि दास से भी अधिक सेवा करता है, तो दास के सदृश उसे आवश्यक नहीं है कि सेवा करे ही। यह बात लोक प्रसिद्ध है कि यदि कोई किसी का दास हो और वह अपने स्वामी की नियत सेवा न करे, तो कृतघ्न समझा जाता है और स्वामी भी उस से प्रसन्न नहीं रहता और जो किसी की शरण में आता है, उसके लिये कोई सेवा नियत नहीं होती, तो भी दासों के समान वह अनुक्षण सेवा करता ही है।

दास्यनिष्ठा की पद्धति स्थल २ पर लिखी है और गोस्वामी ने भी रामायण के अयोध्याकाण्ड में दास्यनिष्ठा का भाव और उस की रीति उत्तम प्रकार से वर्णन की है, सारांश उस का यह है कि दोनों लोकों का लाभ अर्थात् अर्थ, धर्म काम और मोक्ष को मन से दूर करके केवल अपने स्वामी की सेवा और प्रसन्नता को सब से मुख्य समझे और अपने आप को अपने स्वामी के अधीन जान कर, सुख पाकर हर्ष न करे और दुःख पाने से दुःखी न हो। यदि सुख प्राप्त हो, तो समझे कि मेरे स्वामी का दिया हुआ है और दुःख को अपने जन्मान्तरीय पापों का फल समझा करे। लोक में यह रीति है

कि जब कोई दुःख या हानि की बात आ जाती है, तो लोक कहते हैं कि भगवत् की आज्ञा और इच्छा ऐसी ही थी। परन्तु हे मंसाराम! अपने भक्त को दुःख या हानि के लिये भगवत् की आज्ञा कदापि नहीं होती किन्तु भगवत् सर्वदा अपने दास के लिये अच्छा ही करते हैं। भगवत् का कोप करोड़ों ब्रह्मांडों के ब्रह्मा, काल और यम इत्यादि बड़े २ देवता भी नहीं सह सकते, तो करोड़ों अपराधों से भरा हुआ मनुष्य क्या सह सकेगा, इसलिये कभी भूल कर स्वप्न में भी किसी दुःख या उत्पात आने पर दास के मन में यह कभी न आना चाहिये कि भगवत् की इच्छा से हुआ। अर्चानिष्ठा और सेवानिष्ठा में जो सेवायें बता आया हूं, वे ही दास को करनी चाहियें, सेवा चाहे मानसी हो, चाहे श्री विग्रह की हो, जब तक समस्त न करलेगा, तब तक दास्यता की निष्ठा नहीं हो सकती, क्योंकि दास का काम सेवा करने का है, सैर सपाटे या फिरने का नहीं है।

जब दास सेवासे छुट्टी पावे तब अपने स्वामी के संमुख विनय, प्रार्थना, स्तुति या अपराध क्षमादान किया करे और भगवत् के चरित्रों और गुणों का विचार करके उनके आनन्द में मग्न रहा करे, उपासकों में इस निष्ठा को पांच रसों में से एक रस लिखा है। रस के विचार के अनुसार भगवत् सच्चिदानन्दघन, पूर्णब्रह्म, परमात्मा, करुणाकर दीनबन्धु, दीनदयाल, भक्तवत्सल शरणागतपालक इस रसके विषयालम्बन हैं। भगवत्भक्त जो पहिले होगये, अब हैं या आगे होंगे, वे इस रसके आश्रयालम्बन हैं। तिलक, माला, तुलसी और शास्त्रों का चिन्ह धारण करना, चरित्रों का श्रवण, कीर्तन शास्त्रों के अनुकूल बर्तना, भगवत् की सामग्री एकत्र करनी, एकादशी आदि व्रत, सत्संग और भगवत् उत्सव ये सब विभाव और अनुभाव अर्थात् प्रथम और द्वितीय सामग्री है। आठ प्रकार के सात्विक भाव जो आरम्भ में कहे हैं अर्थात् तीसरी सामग्री सब इस रस में प्रवृत्ति करते हैं और चौथी सामग्री अर्थात् तेंतीस व्यभिचारों की दशा वशा, जो वात्सल्यनिष्ठा की भूमिका में बताई हैं, वेही इस दास्य में भी हैं, अधिक नहीं है। भगवच्चरणों की सेवा में निष्फल प्रीति का होना स्थाई भाव है। वह प्रीति ऐसी हो कि किसी प्रकार किसी कारण से किसी घड़ी कम न हो। जैसे गंगा का प्रवाह दिन रात बराबर चलता रहता है, उसी प्रकार चित्त की वृत्ति केवल भगवच्चरणों में लगी रहे। एक सच्चा भगवद्दास अपने प्रभु से इस प्रकार प्रार्थना करता है।

हे प्रभो! हे दीन वत्सल, करुणाकर, पतितपावन महाराज! किस प्रकार और किस अवलम्बन से अपनी दशा के समाचार आप के समीप पहुंचाऊं क्योंकि सब प्रकार से दीन और दुःखी हूं। यदि चुप हो जाऊं तो नहीं हो सकता, क्योंकि आप से निवेदन करने के सिवाय दूसरा उपाय उद्धार का नहीं देखता हूं, क्योंकि आप के सिवाय ऐसा कौन है, जिसको पतित और अधम प्यारे हों, आप के सिवाय दूसरे को पतित और अधम प्यारे नहीं हैं, इसलिये आप से ही निवेदन करता हूं। यदि आप कहें कि दूसरे बड़े २ नामी देवता हैं, उनके शरण क्यों नहीं जाता, तो प्रथम तो वे विचारे अपनी ही चिन्ता में फंसे हुए हैं, फिर वे मेरे लिये क्या करेंगे? दूसरे जबकि आप के चरणकमलों के आगे किसी की कुछ बड़ाई न समझी, तो वे मुझ से कब प्रसन्न होंगे। सिवाय इसके सब स्वार्थ के चाहने वाले हैं, अपनी ही सेवा चाहते हैं, बिना कारण दीन पर प्रसन्न होना तो आप के ही बांटे में

आया है, तो उन देवताओं की सेवा में तो वह जाय, जिसको अपने शुभकर्म और सर्व प्रकार से सेवा करने का भरोसा हो, उनकी सभा में मुझ सरीखे अपराधी को कौन पूछेगा ? इसलिये न तो मुझे कोई जाने का स्थान दीखता है और न कोई स्वामी दिखाई देता है, न कोई दूसरा शरण है, आपके द्वार पर आ पड़ा हूं, जब कभी जो कुछ होगा आप के ही चरणारविन्दों से होगा और यह भी निश्चित है कि आप के द्वार से कोई पतित या पातकी आज तक निराश नहीं फिरा है, इसलिये मेरा निश्चय है कि अपना मनोरथ आप से ही पाऊंगा। एक विनय और भी है कि यद्यपि मेरे मनोरथ का प्राप्त होना मेरे प्रयत्न से अत्यन्त दुर्लभ है, परन्तु आप की कृपा से आप के दासों में मिल सकता हूं। बस इतना चाहता हूं कि नीचेका समाज मेरे मनमें बस जाय:-

स्वर्ग में दैत्यराज बलि का शोभायमान यज्ञमंडप है। भृगु आदि ऋषि यज्ञके ऋत्विज एक ओर बैठे हुये हैं। राजा बलि और रानी विन्ध्यावली एक आसन पर बैठ कर तीन पग पृथिवी का दान कर रहे हैं। सामने ही ऊंचे आसन पर एक छोटा सा परम मनोहर वटुक बैठा हुवा है, जिस के स्वरूप को देख कर सूर्य शीतल होगया है और चन्द्रमा लज्जा से पानी २ होगया है। ऐसे अलौकिक सौन्दर्य वाले ब्रह्मचारी के गले में बृहस्पति का दिया हुआ ब्रह्मसूत्र है, कश्यप ऋषि की दी हुई कटि में मेखला है। भूमि का दिया हुआ कृष्णचर्म शरीर पर धारण कर रखा है, अदिति माता का दिया हुआ कौपीनाच्छादन कटि के ऊपर है, द्यौ देव का दिया हुआ छाता जगत्पति ने शिर पर लगा रक्खा है, वेदगर्भ ब्रह्मा का दिया कमंडलु हाथ में है, सरस्वती की दी हुई अक्षमाला गले में है। ऐसे अपूर्व ब्रह्मचारी को बड़े ही प्रसन्न मन से राजा बलि और रानी विन्ध्यावली हाथ में जल लेकर संकल्प करते हुये ऐसे प्रसन्न हो रहे कि मानों आज उन्हें अटल पद मात्र दान करने से प्राप्त होगया है।

कथा प्रल्हाद जी की।

प्रल्हाद जी भगवद्दासों में अग्रगणनीय दास्य-निष्ठा और भगवत् धर्म के शोभा देने वाले हो गये हैं। उनकी कथा सब पुराणों में और विशेष करके भागवत् विष्णु पुराण और महाभारत में विस्तार से लिखी है, इस लिये यहां संक्षेप से कहता हूं। जब हिरण्य कशिपु के भाई हिरण्याक्ष को भगवत् ने वाराह रूप धारण करके मार दिया, तो हिरण्य-कशिपु सदा एक छत्र राज्य करने और अमर होने के लिये पर्वत में तप करने को चला गया। उसके चले जाने पर देवराज इन्द्र समस्त देश और घर बार हिरण्यकशिपु का लूट कर ध्वस्त करके उसकी स्त्री को पकड़ कर ले चला। नारद जी ने स्त्री को इन्द्र से छुड़ाकर अपनी रक्षा में रखा और ज्ञान का उपदेश किया। प्रल्हाद जी स्त्री के गर्भ में थे, स्त्री को दिया हुआ उपदेश प्रल्हाद जी को होगया, क्योंकि वे गर्भ में बैठे हुये सुनते रहते थे। हिरण्य-कशिपु अति कठिन २ वरदान लेकर आया और उस ने अपना राज्य और घर बार इन्द्र से छीनकर तीनों लोकों की राजगद्दी पर बैठकर सब देवताओं को बन्दी घरमें डाल दिया। कुछ दिन पीछे प्रल्हाद जी का जन्म हुआ और ब्राह्मणों ने हिरण्यकशिपु को मंगल आशीर्वाद दिया कि इस महाभाग बालक के जन्म लेने से तुम्हारा कुल परिवार पवित्र हुआ और तुम्हारे सब पितृ परमधाम के भागी होगये हिरण्यकशिपु ने प्रल्हाद जी को बड़े लाड़ दुलार से पालन किया और जब वे पांच वर्ष के हुए तो उन को शुक्रजी के पुत्र शंड और लिखित के पास राज-

नीति पढ़ने को भेजा, जब गुरु ने पढ़ाना आरम्भ किया तो प्रल्हाद जी ने भगवन्नाम का उच्चारण किया। गुरु ने कहा कि अरे! तू किस का नाम लेता है जिसका तू नाम लेता है, वह तो तेरे पिता का शत्रु है, यदि तेरा पिता सुन लेगा, तो तुझे दंड देगा। प्रल्हाद जी ने कहा कि सब विद्याओं का पढ़ना केवल भगवत् के जानने के लिये है। भगवन्नाम छोड़ कर दूसरी विद्या का पढ़ना निष्फल है और पिता का मुझे कुछ भय नहीं है। गुरु ने प्रल्हाद जी की माता से उनको बहुत शिक्षा कराई परन्तु वे अपने विश्वास और धर्म में दृढ रहे। एक दिन हिरण्यकशिपु ने गोद में बैठाकर प्यार से पूछा कि बेटा! अब तक तुमने क्या पढ़ा है? प्रल्हाद जी ने वही भगवत् का नाम सुनाया। हिरण्यकशिपु क्रोध करके बोला कि यह मेरे शत्रु का नाम तुझे किसने पढाया है? अब फिर कभी इस नाम को न लेना। प्रल्हाद जी ने कहा कि यही नाम सब नामियों का नाम देने वाला है, सब धर्मों का परम धर्म है और सब विद्याओं की परम विद्या है, तुमको उचित है कि इस नामका भजन किया करो। हिरण्यकशिपु यह सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने अपने भृत्यों को प्रल्हाद जी को दंड देने की आज्ञा दी।

भृत्यों ने आज्ञानुसार दंड दिया परन्तु जब कुछ फल न हुआ, तब आग में जलवाया, नदी में डुबवाया, पर्वत पर से गिरवाया, फिर भी प्रल्हाद जी को कुछ क्लेश न हुआ, अन्त में हारकर हिरण्यकशिपु ने फिर उनको पढाने वालों को सौंपा, जब गुरु न रहें, तब प्रल्हाद जी पाठशाला के सब बालकों को उपदेश किया करें कि यह संसार असार है, जगत् का सब व्यवहार नश्वर है, भगवत सार है और सदा सर्वत्र प्राप्त है। भगवच्चरणों में मन लगाना परम सुखरूप है और भगवत से विमुख होना परम दुःखरूप है। मनुष्य का देह केवल भगवद्भजन के लिये है, यदि मनुष्य शरीर से भगवत भजन न किया जाय, तो यह शरीर पशु, पक्षी, तृण कूड़ा कर्कट से भी निषिद्ध है। नारद जी ने मुझे जो उदेपश दिया था, वह मैंने तुमको सुनाया, कल्याण इसी में है कि भगवत शरण होकर भगवत् का स्मरण भजन करो भगवत् को भक्ति प्यारी है, जाति कुल पर उनकी दृष्टि नहीं है।

जाति पांत पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरिका होई॥

यह कहावत ठीक ही है। देवता हो, दैत्य हो दानव हो, मनुष्य हो या निर्दयी हो जो ईश्वर भजन करता है, वह ही ईश्वर का प्यारा है। मैं भी तुम्हारा सजातीय हूं, देखो, भगवत् ने कैसे २ संकट काटे हैं।

हे मंसाराम! बालकों की समझ में प्रल्हाद जी का उपदेश आगया, वे सब भगवद्भजन करने लगे। गुरु ने आकर यह वृतान्त देखा तो घबराया और उसने सब वृत्तान्त हिरण्यकशिपु से जा कर कहा, हिरण्यकशिपु क्रोध की अग्नि से लाल होकर, हाथ में तलवार लेकर आया और प्रल्हाद जी को मारने को उद्यत होकर बोला कि मैं अभी तेरा शिर काटता हूं, बोल तेरा रक्षक कौन है? प्रल्हाद जी ने उत्तर दिया कि वही भगवत् जो सब में व्यापक और समर्थ सर्वत्र प्राप्त है मेरा रक्षक है। हिरण्यकशिपु ने कहा कि क्या इस खम्भे में भी है? उत्तर दिया कि अवश्य इस में भी है। हिरण्यकशिपु ने खम्भे में एक मुष्टिकामारी। उसी समय खम्भे में से प्रचंड भयंकर शब्द निकला और अपने भक्त का वचन सत्य करने वाले भक्तरक्षक भगवत् नृसिंह रूप धारण करके प्रकट हुए। हिरण्यकशिपु युद्ध करने को उद्यत हुआ। दोनों में बड़ी देर तक

युद्ध हुआ। जब संध्या का समय आया तब भगवान् उसको पकड़ कर अपने जानुओं पर डालकर, गृह के द्वार पर अपने नखों से उसका उदर फाड़ कर उसको अपने धाम भेज दिया। इस प्रकार ब्रह्मा के वरदान को भी सत्य रक्खा। यह वृत्तांत वैसाख शुक्ला चतुर्दशी मध्याह्न के समय से संध्या तक हिरण्यकशिपु की राजधानी मुलतान में हुआ।

प्रबल दैत्यराज का वध हुआ देख कर ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिक सब देवता स्तुति और विनय करने लगे, आकाश में से फूलों की वर्षा होने लगी और जय जयकार की ध्वनि ब्रह्माण्ड भरमें गूँजने लगी, उस समय भगवत् का स्वरूप ऐसा विकराल और क्रोध में भरा हुआ था कि किसी का यह सामर्थ्य न हुआ कि उनके समीप जाकर उनका क्रोध शांत करावे। तब सब ने प्रह्लाद जी से भगवत् का क्रोध शान्त कराने को कहा। प्रह्लाद जी दण्डवत् करके इस प्रकार विनय करने लगे कि हे प्रणतार्तिभञ्जन! आपकी महिमा अपार है, वेद और ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सकते, तब मुझ अधम, अज्ञ बालक से कैसे वर्णन हो सके? आपको कृपासिंधु, दीनवत्सल जानकर विनय करता हूं कि आपके क्रोध भरे स्वरूप से सब देवता भयभीत और कम्पायमान हो रहे हैं, कृपा करके उनका भय दूर कीजिये। तब भगवत् ने अपना क्रोध शान्त किया और प्रसन्न होकर कहा कि अच्छा, जो इच्छा हो, वर मांगो, पूर्ण करूंगा, प्रह्लाद जी ने कहा कि आप के चरण कमलों की भक्ति के सिवाय अन्य किसी वस्तु की चाहना नहीं है, कर्मवश जो शरीर मुझे मिले, उसमें आपके चरणों की प्रीति बनी रहे, इतना ही वरदान मांगता हूं। भगवत् ने भक्ति का वरदान दिया और राज गद्दी पर बैठा कर अपने हाथ से राज तिलक करके दैत्यों का अधिपति बनाया।

हे मंसाराम! उस समय भगवद्रूप की शोभा ऐसी थी कि यदि हजारों सूर्य एक साथ उदय हों, तो वे भी भगवत् के मुख के तेज की समता न पासकें। उस मुख पर जहां तहाँ रुधिर की बूंदें लगी हुई थीं, बड़ी २ लाल २ आँखें कुछ २ पिलाई लिये हुए थीं, जीभ से बारंबार अपने ओठों को चाट रहे थे, मूछें भूरी २ थीं, गर्दन के बाल पीले और श्याम थे, दोनों हाथ अतिबलिष्ट थे, नख तीक्ष्ण थे, चौड़ी छाती के ऊपर आंतों की माला विराजमान थी और पूँछ कमर के ऊपर से होकर शिर के ऊपर चमर के समान लहरा रही थी। प्रह्लाद जी को गोद लेकर राज तिलक कर रहे थे, देवता चारों ओर खड़े हुए विनती कर रहे थे, आकाश में दुन्दभी आदि बाजे बज रहे थे, अप्सरायें नृत्य कर रहीं थीं, गन्धर्व भगवच्चरित्रों का कीर्तन कर रहे थे, पुष्पों की वर्षा हो रही थी! हे मंसाराम! भगवत् का स्वरूप ऐसा नहीं था, कि कोई अंग व्याघ्र का हो और कोई अंग मनुष्य का हो किंतु भगवत् का समस्त स्वरूप कभी व्याघ्र के रूप से दीखता था और कभी मनुष्य का सा दिखाई देता था। यह बात भगवत् के तिलक से प्रकट है परन्तु विशेष करके भगवद्रूप व्याघ्र का शरीर देखने में आता था।

पश्चात् भगवत् तो अन्तर्धान हो गये और प्रह्लाद जी राज्य करने लगे। उनके राज्य में भगवद्भक्ति का ऐसा प्रचार हुआ कि कोई भगवद्विमुख नहीं रहा। इनके राज्य में न्यायधर्म इतना था कि एकबार प्रह्लाद जी के पुत्र विरोचन और श्रुतधन्वा ब्राह्मण में एक सुन्दरी स्त्री के लिये परस्पर यह विवाद हुआ कि विरोचन तो राजा का पुत्र होने से उस स्त्री को आप लेना चाहता था और ब्राह्मण कहता था कि राजा आदिकों से ब्राह्मणों की श्रेष्ठता है, इसलिये यह स्त्री प्रथम मेरा भाग है। इस झगड़े

का न्याय प्रह्लाद जी से कराने का निश्चय किया गया और परस्पर यह प्रबन्ध ठहर गया कि राजा के यहाँ जो अन्यथा कहने वाला ठहेरा उसका वध किया जाय। प्रह्लाद जी ने पुत्र का पक्ष न लिया और ब्राह्मण का कथन सत्य कह कर उसको वह स्त्री दिलवादी और पुत्र के वध के लिये आज्ञा दी। वह ब्राह्मण इस न्याय से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने विरोचन को वध से बचा कर प्रह्लाद जी को दे दिया।

हे मंसाराम! इस प्रह्लादचरित्र से भगवत् की भक्तवत्सलता पर विचार करना चाहिये कि हिरण्यकशिपु राज के आरम्भ से ही देवताओं को पीड़ा देता था और देवता लोग सदा त्राहि त्राहि पुकारते रहते थे परन्तु भगवत् ने कभी हिरण्यकशिपु की ओर तक भी दृष्टि नहीं की, जब उसने भगवद्भक्त को दुःख दिया, तो न सह सके और भक्त के न पुकारने पर भी भक्त की सहायता की। एक शिक्षा यह भी इस चरित्र से मिलती है कि यदि पिता भी भगवत् के संमुख होने में बाधा करे, तो वह भी त्यागने योग्य है, जैसा प्रह्लाद जी ने किया।

प्रह्लाद जी के सम्बन्ध में नीचे की कुँडली है–

कु–भक्तों में उत्तम हुए, दैत्य पुत्र प्रह्लाद।
पढ़त सुनत जिनकी कथा, होय परम आह्लाद॥
होय परम आह्लाद, चित्त हो जावे निर्मल।
जल थल में दें दर्श, देव शाश्वत हरि निष्फल॥
भोला! वे ही धन्य, देव पशु नर दैत्यों में।
कर लेवें स्वीकार, जिन्हें हरि निज भक्तों में॥

कथा अंगद जी की।

वानरराज बालि के पुत्र अङ्गद जी ऐसे परम पवित्र भगवद्भक्त हुए हैं कि युवावस्था, राज्य सुख और ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी मन की वृत्ति सदा भगवच्चरणों में लगाये रहते थे। श्रीरघुनन्दन महाराज ने सुग्रीव की दीन पुकार सुन कर इनके पिता का वध किया परन्तु ये तनक भी भक्ति और धर्म से न फिरे किन्तु प्रसन्न हुए कि बालि ऐसी पदवी के योग्य न था जो उसको प्राप्त हुई। इन्होंने जनकनन्दनी के खोजने में और रावण से युद्ध होते समय ऐसा परिश्रम किया और ऐसी शूरता दिखलाई कि उसका वर्णन नहीं हो सका। यह वृत्तान्त रामायण में विस्तार से लिखा है, संक्षेप से कहता हूं कि जब श्रीरघुनन्दन महाराज की ओर से रावण की सभा में दूत बन कर गये, यथा योग्य प्रश्नोत्तर हुए तो उस समय रावण के मुख से यह अनुचित बात निकली कि जैसे अन्य मनुष्य हैं, वैसे ही तेरे स्वामी रामचन्द्र भी हैं। यह वचन सुनते ही अङ्गद जी क्रोध में भर के काल स्वरूप हो गये, कितने ही राक्षस भय से भाग गये, रावण भी कांप कर गिर पड़ा और साथ में उसके माथे से मुकुट भी गिर गये। उनमें से कई मुकुट अङ्गद जी ने श्रीरघुनन्दन महाराज की सैना में फेंक दिये। पीछे जब उत्तर प्रत्युत्तर का संयोग हुआ तो अङ्गद जी ने चरण रोप के रावण से प्रण किया कि यदि तुम में से कोई मेरा चरण उठा देगा, तो श्रीरघुनन्दन महाराज लौट जायँगे और सीतामहारानी को मैं हार चुका। इस बात को सुन कर इन्द्रजित् आदिक बड़े २ बल लगा कर हार गये परन्तु जैसे कामियों की बातें सुन कर पतिव्रता का मन नहीं हिलता अथवा जैसे कैसी ही आपत्ति आने पर भी भक्त का मन हरिभजन और न्याय से चलायमान नहीं होता, तैसे अंगद जी का चरण न हिला न चला। राक्षसों ने भाँति २ के उपायों से चरण को उठाना चाहा, परन्तु चरणने

धरती को इस प्रकार नहीं छोड़ा कि जैसे बिना भगवद्भजन संसार का दुःख और बिना ब्रह्म विद्या के अज्ञान नहीं, छूटता। जब सब लज्जित होकर बैठ गये, तब रावण ललकार कर उठा और चरण पकड़ना चाहता था, उसी समय अंगद जी ने शिक्षा और तर्क रूप से कहा कि अरे मूढ़! मेरे चरण के पकड़ने से तेरा क्या भला होगा, श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरण क्यों नहीं पकड़ता कि कृतार्थ हो जावे। रावण लज्जित होकर सिंहासन पर जा बैठा।

हे मंसाराम! अंगद जी को भगवत् का ऐसा भरोसा और दृढ़ विश्वास था कि प्रण करते समय किंचित् भी सन्देह न किया। जब लंका को जीत कर रघुनन्दन स्वामी अयोध्या में आये तो अंगद जी भी उनके साथ आये और राज्याभिषेक होने के बाद भगवत् की आज्ञा लेकर अपने घर लौट आये और भगवत् के स्मरण भजन में ऐसे लीन हुए कि भगवच्चरणों के सिवाय दूसरी ओर तनिक भी चित्त की वृत्ति न गयी। सच कहा है-

कुं-अंगद का पावन चरित, यह ही शिक्षा देय।
ध्यान करे नित राम का, नाम राम का लेय॥
नाम राम का लेय, आश सब जग की त्यागे।
सच्चित् परमानन्द, राम चरणन अनुरागे॥
भोला सब दे त्याग त्याग, त्याग कर हरिपद का।
यह ही शिक्षा देय, चरित पावन अङ्गद का॥

आह्वाहन।

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम]

मोहन! कब फिर वह मुरली का मीठा नाद सुनाओगे।
तृषित भूमि भारत माता को कब पय बुन्द पिलाओगे॥
दीन दुखी अबलाओं पर कब करुणा कोर बहाओगे।
घोर विधर्मी अधम जनों पर चक्र प्रहार चलाओगे॥
भूखी प्यासी गौमाता का करुण शीश बचाओगे।
जमुना तट पर ग्वालन के संग प्रेम प्रमोद बढ़ाओगे॥
दुख दरिद्रता वही देश में कब दर्शन दिखलाओगे।
अपने प्रण को क्या जगदीश्वर झूठा कर दिखलाओगे॥
लाखों प्राणी तड़फ रहे हैं आओ प्रभु कब आओगे।
दीन गुहार श्रवण सुन क्या तुम अब भी ना सरसाओगे॥

भक्ति और ज्ञानका तारतम्य

[ले० भक्तरत्न श्री मथुराप्रसाद जी]

प्रिय पाठक वृन्द! गत अंक में निवेदन हो चुका है कि जो लोग केवल कथन मात्र के ज्ञानी बने हुए भगवद् भक्ति से शून्य वाचक ज्ञानी हैं वे वास्तव में सद्गति से च्युत होकर बुरे परिणाम पर पहुंचते हैं उसकी पुष्टि इस श्रीमद्भागवत् के प्रमाणिक वचन से होती है।

श्रेयस्कृतिं भक्तिमुदस्यते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये
तेषामसौक्लेशलएव शिष्यते नान्यद्यथास्थूल तुषावघातिनाम्

अर्थात् जो लोग भगवद् भक्ति से विमुख केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये कष्ट उठा रहे हैं। उनके हाथ सिवाय क्लेश के कुछ नहीं आता जैसे थोथे धान के कूटने से चावल हाथ नहीं आते जब तक भरे हुए धान हाथ न आवें। इसी प्रकार सरस हरि प्रेम लक्षणा भक्ति से जो लोग वंचित होकर अद्वैत (ब्रह्मज्ञान प्राप्ति) के लिये पचते हैं मानों रस रहित खाली ब्रह्मज्ञान से कोई लाभ नहीं उठा सकते। अब विचार कीजिये जब यथार्थ ज्ञानियों को भक्ति बिना कुछ लाभ नहीं तो वाचक ज्ञानी महानुभावों का तो कहना ही क्या:-

पूरण ब्रह्मांड में जग व्यापक धर्म अधर्म को मैं नहि भागी।
वाचक ज्ञानी बड़े अभिमानी कहैं असवानी विषय अनरागी॥

पाप करें न डरें परलोक से दान दयादिक सुकृत त्यागी।
श्रीमधुरेश की भक्ति विहीन मलीन पड़ें भवकूप अभागी॥

वेदों में तीन कांड प्रसिद्ध हैं कर्म उपासना और ज्ञान, इनमें प्रधान कौन है इस विचार में बड़े २ ऋषि मुनि अपनी २ बुद्धि दौड़ा के अपना अपना मत प्रकाशित कर गये हैं पूर्व मीमान्सा के आचार्य महात्मा जैमिनी जी ने सिद्धान्त किया है कि कर्म ही मुख्य साधन भगवत् प्राप्ति का है। वेदान्त शास्त्र ज्ञान को और प्रचलित वैष्णव संप्रदायों के आचार्य उपासना को प्रधान बतलाते हैं। इसके निर्णयार्थ एक राजाने विद्वानों की बड़ी सभा कराई, पंडितों में तीन थोक होगये, किसी ने कर्म को किसी ने ज्ञान और किसी ने भक्ति को वैदिक प्रमाणों द्वारा मुख्य सिद्ध किया किसी ने तप और ब्रह्मचर्य की मुख्यता वर्णन की। राजा बड़े संकट में पड़ गया, जिस पंडित का भाषण सुनता युक्ति और प्रमाण उसी के प्रबल प्रतीत होते थे। एक महात्मा ने राजा को घबराया हुआ देख उसके समाधान के लिये नीचे लिखी हुई युक्ति बतलाई। महात्मा बोले हे राजन! किसी चक्रवर्ती महाराजा ने एक नगर बसाया जिसका नाम अद्भुत नगर रक्खा। उसमें नाना प्रकार के उत्तमोत्तम बाग बगीचे महल मन्दिर ऐसी विलक्षण कारीगरी के निर्माण कराये जिन्हें देख कर लोग चकित रह जाते और अनेक भाँति के भोगों की सामग्री वहाँ पाकर लोग वहीं निवास करने को ललचाते थे। कुछ दिनों में उस नगर की ऐसी महिमा और प्रशंसा जगत्में प्रसिद्ध होगई कि देश देशान्तर से झुण्ड के झुण्ड मनुष्य उस नगर में प्रवेश के लिये नाना प्रकार के यत्न करने लगे और वह नगर का निर्माण करने वाला महाराजा भी उसीमें निवास करता था उसके पास पहुंचने को बड़े २ ऋषिमुनि ज्ञानी योगी तपस्वी सब लालायित रहते और विविध उपाय करते थे। जो सुख उस नगर में था वैसा स्वर्ग में भी नहीं प्राप्त हो सकता था, परन्तु महाराजा ने उस नगर में प्रवेश के तीन मार्ग नियत किये थे। उन तीन मार्गों में एक तो ऐसा मार्ग था कि जो मनुष्य जाता घूम घाम कर उसी स्थान में आ पहुंचता था जहां से वह चला था नगर तक पहुंच ही नहीं सकता था। दूसरा ऐसा मार्ग था जिसमें दो बड़ी सुन्दरी स्त्रियें प्राप्त होकर पथिक को हाव भाव कटाक्ष द्वारा मोहित करके अपने निकट ही ठैरा लेती थी और बटोही मुग्ध होकर आगे बढ़ने से रुक जाता था। तीसरा मार्ग ऐसा सुगम था जिसमें न तो किसी प्रकार का भय था और न कोई रोक टोक, और जाने वाला बहुत जल्दी उस मार्ग से अद्भुत नगर में पहुंच जाता था।

इतना कह कर महात्मा उस राजा से जो कर्म उपासना ज्ञान में उत्कर्ष और तारतम्य जानने का उत्सुक था प्रश्न करने लगे कि राजन! जरा ध्यान देकर बतलाइये उस अद्भुत नगर की प्राप्ति के लिये मनुष्य को कौन सा उपाय करना चाहिये। एक तो जिन लोगों ने उस नगर की प्रशंसा सुनी है उनसे निश्चय करना उचित होगा या दूसरे उन लोगों से प्राप्ति का मार्ग पूछना उत्तम होगा जो उस नगर को वहां पहुंच कर देख आये हैं। या तीसरा उपाय यह कि उस चक्रवर्ती महाराज से स्वयं सुन कर निश्चय किया जाय जिसने नगर बनाया और उसमें पहुंचने के तीनों मार्ग नियत किये हैं?

राजा ने सोच विचार कर महात्मा से कहा कि हे महानुभाव! उस नगर में जाने के लिये उन लोगों से पूछना तो किसी काम का नहीं जो वहां पहुंचे ही नहीं केवल उन्होंने उस नगर की बड़ाई सुनी है। उनकी अपेक्षा तो उन लोगों से पूछना

अच्छा है जो उस नगर में पहुंच कर निवास कर आये हैं और सब से उत्तम और लाभदायक उन चक्रवर्ती महाराज के मुख से श्रवण करना प्रतीत होता है जो उस नगर के निर्माता और मार्गों के नियत कर्ता हैं। तब महात्मा ने राजा को समझाया कि राजन्! वो नगर भगवत् धाम है। वैकुण्ठ साकेत गोलोक आदि उसी भगवान के दिव्य धाम के नाम हैं। भक्त लोग उसी धाम को प्राप्त होने की उत्कण्ठा रखते हैं और यथारुचि निज २ इष्ट के निवास स्थान के रुचि अनुसार नाम कल्पना कर लिये गये हैं। लक्ष्मी नारायण के उपासक उसे वैकुण्ठ कहते हैं। और राम उपासक साकेत तथा श्रीकृष्ण उपासक गोलोक कहते हैं। वहां पहुंचने के तीन मार्ग हैं। कर्म उपासना ज्ञान, कर्म मार्गी शुभ कर्मों का स्वर्ग में फल भोग कर उलटे संसार में आजाते हैं 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोके विशन्ति' ज्ञानियों के लिये मार्ग में दो स्त्रियें रोक लेने वाली कौन हैं एक अहन्ता दूसरी ममता, शरीर में आत्म बुद्धि अहन्ता है और शरीर सम्बन्धी पदार्थों में आत्मीयता का नाम ममता है, यही अहन्ता मोक्ष मार्ग में रुकावट डालने वाली है। इनका तिरस्कार करके जब आत्मनिष्ठ हो जाय तब परमानन्द धाम की प्राप्ति होती है। अब तीनों मार्ग के विषय में जो भिन्न २ कथन हैं सो ध्यान देकर सुनिये। एक अद्वैत वादी ब्रह्मज्ञान कहते हैं:-

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्।
पीताम्बरादरुण बिम्बफलाधरोष्ठात्॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्द नेत्रात्।
कृष्णापरं किमपि तत्वमहन्न जाने॥

अर्थात् परम तत्व कृष्ण है, और कोई तत्व उनसे परे नहीं है। इससे भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध हुई।

दूसरे महात्मा कहते हैं:-

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्या स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षा।
शठेन केनापि वयं हठेन दासी कृता गोप वधूविटेन॥

अर्थात् हम पराकाष्ठा के आत्मज्ञानी थे परन्तु हमको एक धूर्त गोपियों के यार ने जबर दस्ती अपना दास बना लिया। इस प्रकार के अनेक प्रमाणों से भक्ति की ज्ञान से श्रेष्ठता सिद्ध होती है परन्तु यह वचन तीसरी कोटि के ज्ञानी भक्तों के हैं। इनकी अपेक्षा से दूसरी कोटि के महत्पुरुषों की संमति क्या है यह देखना चाहिये। क्योंकि यह लोग भगवत् धाम में प्रवेश कर चुके हैं इनका कथन अधिक प्रमाणित होगा। उनमें नारद ऋषि का कथन अधिक मान्य है, नारद पंचरात्र में नारदजी कहते हैं:-

हरि भक्ति महादेव्याः सर्वा मुक्त्यादि सिद्धयः।
मुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावद्नुव्रताः॥

अर्थात् हरि भक्ति महादेवी ऐसी है जिसके मुक्ति से आदि लेकर सिद्धियें और स्वर्गादि के भोग सब दासी की भांति पीछे पीछे फिरती हैं। (ज्ञान का फल जो मुक्ति है वोह भी भक्ति की दासी है। और फिर कहा है:-

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत्परार्द्ध गुणीकृतः।
नैति भक्ति सुखाम्भोधेः परमाणु तुलामपि॥

परार्द्ध संख्या से आगे संख्या नहीं है। यदि ब्रह्मानन्द का परार्द्ध गुणित किया जाय तो भक्ति के सुख के सामने परमाणु बराबर भी तोल में नहीं है। ऐसे ही वृहन्नारदीय तन्त्र में कहा है कि:-

भक्त संगे भ्रमत्येव छाये व सततं हरिः।
चक्रेण रक्षते भक्तान् भक्त्या भक्तजनप्रियः॥

भगवान् भक्त के साथ २ छाया की तरह फिरते हैं और चक्र से भक्तों की रक्षा करते हैं।

श्रीमद्भागवत में वेद स्तुति में लिखा है:-

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्त भावादविशुद्धबुद्धयः
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः ॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् ।
भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्ध सौहृदः ॥
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया ।
विनायकानीक कपमूर्धसु प्रभो ॥

अर्थात् हे कमल नयन जो लोग ज्ञान बल से अपने को मुक्त मानने वाले हैं और आप में भक्ति भाव न रखने से अशुद्ध बुद्धि हैं वे अति कठिनाई से परम पद पर पहुंच कर भी नीचे गिर जाते हैं। वैसे हे माधव! तेरे अपनाये हुए जन भी मार्ग से भ्रष्ट नहीं होते क्योंकि उन्होंने तुझ में प्रीति की है इस कारण तुझ से रक्षित होके विघ्नों के सरदारों के माथे पर चरण रख कर निर्भय विचरते हैं। इत्यादि अनेक प्रमाण और भी बहुत से हैं, यह उन लोगों का कथन हुआ जो भगवत् धाम में पहुंचे हुए हैं। यहां तक जो प्रमाण कहे गये उन सब से अधिक विश्वास के योग्य कथन खुद उस अद्भुत नगर के निर्माता का समझना चाहिये सो नीचे लिखे जाते हैं।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

भगवान् आज्ञा करते हैं कि न मुझे योग प्राप्त कर सकता न ज्ञान तप न वैराग, जैसी कि मेरी उच्च कोटि की भक्ति।

अहंभक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्रइव द्विजाः ।

हे ब्राह्मणो मैं भक्तों के वस में अस्वतन्त्र की तरह पर हूं।

भक्तानामनुगच्छन्ति मुक्तयः श्रुतिभिः सह ।

ज्ञान का फल जो मुक्ति है वह सब प्रकार की मुक्तियें भक्तों के पीछे पीछे फिरती हैं और वेद की श्रुतियां भी उनके साथ २ रहती हैं।

क्लेशोधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम् ॥
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।

जो ज्ञानी लोग अव्यक्त निराकार में आसक्त हैं बड़ा दुःख पाते हैं,

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यति सत्यं ते प्रति जाने प्रियोसि मे ॥

भगवान् प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि मुझ में मन लगा मेरा भक्त हो तू मुझे ही पावेगा। अर्थात् भगवत्प्राप्ति का मार्ग निष्कंटक भक्ति ही है।

अपूर्ण

धर्म का यथार्थ पुरस्कार

[ले० श्री मोहनलाल जी गुप्त]

धर्मका किया कर्म या अनुष्ठान धर्म नहीं है वास्तविक धर्म-जीवन ही धर्म है। प्रभुकी भक्ति, प्रभु सन्तान समझ मानव-सेवा और निर्मल निष्कलंक जीवन ये तीन ही धर्म हैं। स्वर्ग एवं पृथिवी पर मनुष्य के लिये येही सर्व श्रेष्ठ धन है, मनुष्य इस धनका जितना अधिक संग्रह करेगा उतने ही अधिक दिनों वह इस लोक में स्वर्ग-सुख सम्भोग कर सकेगा।

प्रभुने मनुष्य को जिन शक्तियों का अधिकार दिया है उन्हें पूर्णरूप से प्राप्त करलेना ही पूर्ण-कल्याण है। मानव-सृष्टि का उद्देश्य भी यही है, धर्म हमें इस पूर्णता को प्राप्त करना सिखलाता है हमारी ज्ञानबुद्धि को जाग्रत करता है हमारे विचारों को ऊंचे लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है, प्रेमको निःस्वार्थ एवं निर्मल बनाता है, एवं हमें कर्तव्य-पालन में कठोर बनाता है। भक्तों का कहना है प्रभु ने मानव सृष्टि अपने ही आदर्श पर रची है धर्म

मनुष्य को उसी आदर्श की ओर खींच ले जाता है एवं पूर्ण-ईश्वर समानता प्राप्त करवाता है।

अनेक मनुष्यों की धारणा है कि ईश्वर उपासना से इहलोक और परलोक में नाना प्रकार की भोग्य-वस्तु देता है परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि भक्ति, प्रेम और साधुता का पुरस्कार अनित्य, क्षणभंगुर सांसारिक नाशवान् पदार्थ नहीं हो सकते, उसके बदले में तो और भी अधिक भक्ति की गम्भीरता, प्रेमकी उन्मत्तता और चरित्र की निर्मलता ही मिलती है, इनकी वृद्धि का कभी अन्त नहीं होता।

योग, यज्ञ और होमरूप पुण्य का पुरस्कार स्वर्ग कैसा है पता नहीं, पर भगवद्भक्ति मानव-प्रेम और निर्मल चरित्र यदि धर्म है तो यह धर्म ही स्वर्ग है और यह स्वर्ग कभी क्षय नहीं होता, इसका भोग करने पर मनुष्य के पतन की सम्भावना नहीं रहती।

न्याय और अन्याय को, धर्म और अधर्म को हम लोग जानते हैं, केवल जानते ही नहीं, प्रभु ने हमारे हृदय में एक ऐसी शक्ति स्थापित कर दी है जो पाप और मलिनता से हटा कर हमें धर्म का अनुसरण करने का आदेश देती है। यदि इस अन्तर्ध्वनि को तुच्छ समझ, धर्म-विधि का उलंघन कर हम मोह मरीचिका के फंदे में अपने को फंसा देते हैं तो आप ही अपना नाश करते हैं एवं तीव्र आत्मग्लानि से दग्ध होते हैं।

'मैं जीवित हूं' यह कहना जितना सत्य है, 'मैं धर्म के आधीन हूं' यह भी उतना ही सत्य है। अतः धर्म का पालन ही हमारे आनन्द और शान्ति का कारण एवं जीवन की सार्थकता है। भगवान् हमारी प्रवृत्तियों के द्वारा ही हमें सुखी करते हैं।

मनुष्य केवल धन-संग्रह से सुखी नहीं हो सकता, बाहरी-सम्पद शान्ति प्रद नहीं होती, हमारे चरित्र और हृदय की पवित्रता पर हमारी सुख शान्ति निर्भर है। यह जान कर भी हम इस असार संसार को ही उच्च स्थान देते हैं और सांसारिक सुख एवं सुविधाओं के लिये ही धर्म साधन करते हैं।

जिनका धर्म पर विश्वास नहीं है, जो ईश्वर और परलोक को नहीं मानते, सम्भव है उन के हृदय में विवेक वर्तमान हो पर वह विवेक उनके मनका केवल एक संस्कार या खेल है। उन के जीवन पर उस विवेक का कुछ भी अधिकार नहीं होता, पाप से संग्राम करना उनके लिये असम्भव सा होता है। पर यदि धर्मराज विधाता पर हमारा विश्वास हो तो हम विवेक को उनकी आज्ञा के सिवा और कुछ नहीं मान सकते एवं फिर हम उसे अचल श्रद्धा की दृष्टि से देखने को बाध्य हो जाते हैं। ईश्वर को न मानने वाले धर्म-विधिका उलंघन करके भी सुख की आशा कर सकते हैं पर पुण्यमय ईश्वर में सत्य विश्वास करने वाला मनुष्य, प्रज्वलित अग्नि-कुण्ड में प्रवेश कर शान्त रूप से बाहर आने की आशा रख सकता है पर धर्म विधिका त्याग कर सुख की आशा स्वप्न में भी उसे नहीं होती।

ईश्वर अस्तित्व का विरोधी मनुष्य सोचता है कि उसके मन की सारी कुवासनायें उस के हृदय में छिपी रहेंगी, कोई भी नहीं जान सकेगा। पर उस प्रभु पर पूर्ण विश्वास रखने वाला भक्त क्या कभी स्वप्न में भी सोच सकता है कि जिसकी दृष्टि सहस्रों सूर्यों की अपेक्षा उज्वल और प्रकाशमय है उस अन्तर्यामी सर्वद्रष्टा की दृष्टि से हम अपने पाप छिपा लेंगे।

हां! धर्म-विश्वास न होने पर भी मनुष्य श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न करता है क्योंकि धर्म हमारी

स्वाभाविक प्रवृत्ति है, एवं ईश्वरीय, ध्वनि न स्वीकार करने पर भी वह हमें धर्म विधि की ओर प्रेरित करती है। धर्म-विधि पालन से हमें जो आनन्द, शान्ति और आत्मप्रसाद प्राप्त होता है वह किसी विश्वास या अविश्वास पर निर्भर नहीं है। परन्तु हृदय की आन्तरिक चिन्ताओं एवं कामनाओं को पवित्र रखने के लिये निरन्तर प्रार्थना, मनुष्य की निःस्वार्थ सेवा के लिये अचल आकांक्षा और इसी उद्देश्य से दुःख और कष्टों का सानन्द ग्रहण सांसारिक उन्नति की अपेक्षा आत्मा की पवित्र शान्ति के श्रेष्ठत्व का ज्ञान एवं अहंकार-विनाश के लिये पूर्ण प्रयत्न ये बिना भगवान् पर विश्वास के बिना भगवान् के पवित्र चरण, सेवन एवं आशीर्वाद के पूर्ण नहीं हो सकते।

मनुष्य का भयानक शत्रुदल अत्यन्त दुर्दमनीय है, कभी कभी वह इतने सूक्ष्म रूपों एवं बनावटी वेशों में उपस्थित होता है कि केवल अपनी शक्ति पर निर्भर हो मनुष्य उससे नहीं बच सकता।

धर्म क्या है? यह हम जानते हैं, साधु जीवन बिताना हमें पसन्द है, विवेक हमें ऊंचा उठाने की कोशिश करता है पर इस जड़ देह के भार से हम उठ नहीं सकते। सांसारिक, सुखों की, लुभावनी, लालसा के आकर्षण से खींच कर हम बार बार धूल में पड़े छटपटाते हैं, प्रवृत्ति के प्रबल स्रोत में बहे जाते हैं, पर इस प्रवाह के प्रतिकूल स्व-सामर्थ्य से अग्रसर होना कितना कठिन है यह हम भली भांति जानते हैं।

ईश्वर के अस्तित्व का या किसी प्राकृतिक ऐतिहासिक घटना का इन्द्रिय गोचर प्रमाण दिया जा सकता है पर ईश्वर और परलोक के सम्बन्ध में न वैसा प्रमाण है और न देना ही सम्भव है। ईश्वर और परलोक हमारे विश्वास की वस्तु है, हमारी आशा और आकांक्षा की चीज़ है, आन्तरिक उपासना से हम हमारी आत्मा द्वारा उनकी साक्षात् अनुभूति कर सकते हैं। पर इसी लिये क्या हम उन्हें केवल कल्पना कह दें? क्या चक्षु-कर्ण प्रभृति इन्द्रियों की साक्षी ही प्रमाण है, आत्मा की साक्षात् अनुभूति कुछ भी नहीं।

परलोक-विश्वास और ईश्वर-विश्वास का अच्छेद्य बन्धन है। प्रभु हमारा परम मङ्गलमय पिता है यह सत्य हो तो परलोक और अनन्त जीवन निश्चय ही स्वप्न नहीं है। मृत्यु ही हमारा अन्त नहीं हो सकता। उस सत्य स्वरूप ने अपने हाथों से हमारे अन्दर जिस आशा और आकांक्षा को स्थापन किया है वह क्या स्वप्न सम्भव है?

क्रमशः हम हमारी प्रवृत्ति की पूर्णता के लिये अग्रसर होंगे, उस उन्नति से हमारे वर्तमान जीवन की तुलना नहीं हो सकती। अनन्त स्वरूप भगवान् जिस प्रकार हमारी चिन्ता और कल्पना से अतीत है, हमारा अपना भाविष्क-सौभाग्य भी उसी प्रकार हमारी धारणा के बाहर है।

(बंगला से अनुवादित)

योग-साधन।

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

३०. शरीर न तो जड़ है और न ही चैतन्य है। चैतन्य तो इसलिये नहीं है कि बिना चैतन्य के यह चैतन्य नहीं है और जड़ इसलिये नहीं है कि अहंकार से सम्बन्धित होने के कारण इधर उधर चलता है और काम करता है। जैसे कि लोहे का गोला अग्नि में तपाने से अग्नि से सम्बन्धित होने

के कारण अग्नि की भान्ति चमकता है इसी प्रकार से यह शरीर भी चैतन्य से सम्बन्धित होने के कारण चैतन्य है।

३१. तृष्णा मनुष्य के समस्त दुःखों का मूल कारण है। तृष्णा के कारण मन बड़ा चंचल रहता है, इस शान्ति के हटी शत्रु को नष्ट करने के लिये केवल वैराग्य ही बड़ा शस्त्र है।

३२. अर्ध नग्न, भूखा प्यासा फकीर जिसका मन ऋषिकेश में जनवरी मास में गंगाजी के जल की भांति पवित्र है वास्तव में राजाओं का राजा है। वह दैविक विभूति है।

३३. बालक का मन बहुत ही चंचल होता है वह अब तो मिश्री की डली माँगता है, एक मिनिट पीछे बर्फ का टुकड़ा मांगता है, फिर अपने पिता से चान्द को तोड़ कर खेलने के लिये लाने को कहता है।

३४. वेश्या का मन भी बड़ा चंचल होता है वह कभी एक पुरुष से दृढ़ता और आन्तरिक भक्ति से प्रेम नहीं करती।

३५. बकरी का मन भी बड़ा चंचल होता है। वह एक दो सैकण्ड एक स्थान पर चरेगी फिर चाहे वहां खूब घास भी हो तुरन्त दूसरे स्थान पर चली जायगी।

३६. अहंकार पुरुष है जो शरीर में रहता है। तृष्णा उसकी स्त्री है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य यह छ उसके पुत्र हैं और दम्भ, दर्प, ईर्षा, असूया, राग और द्वेष यह छ उसकी पुत्रियां हैं।

३७. शायद बालू से तेल और लोहे से घी निकल आये परन्तु एक मूर्ख सांसारी का मन भगवान की तरफ नहीं लगाया जा सकता।

३८. जैसी मती वैसी गति। इसलिये मनुष्य का भविष्य उसकी बुद्धि की उन्नति पर निर्भर है।

३९. यदि बुद्धि उच्च होगी तो सदाचार और सात्विक गुणों से युक्त अच्छा जन्म मिलेगा। यदि निकृष्ट बुद्धि होगी तो निकृष्ट गुणों साहित निकृष्ट जन्म होगा।

४०. ब्रह्मशान्त और निष्क्रिय रूप है जहाँ किसी प्रकार की द्वैत भावना नहीं होती। यह निवृत्ति रूप है। यह अवस्था एकान्त विरक्त स्थान में लगातार खूब निदिध्यासन करने से प्राप्त होती है। यह निष्काम कर्म से कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। निष्काम कर्म से केवल चित्त शुद्धि प्राप्त होती है।

४१. इच्छा, भय और क्रोध साथ साथ होते हैं। जब क्रोध होता है तो यह भी अनुभव किया जा सकता है कि इच्छा और भय भी अवश्य है। इच्छा का दूसरा रूप क्रोध है और भय इच्छा का पुराना मित्र है।

४२. आकाशवृत्त पर आकाश भूमि से मिला हुवा मालूम होता है। यह केवल दृश्य मात्र है। इसी प्रकार विषय भोग भी सब अवास्तविक हैं केवल माया मात्र हैं। सत्य केवल ब्रह्म है।

४३. सूर्य की किरणें जब आतशी शीशे में से गुजरती हैं तो वह कपड़े को जला सकती हैं। इसी प्रकार शरीर स्थित चैतन्त का प्रकाश बाहर आकर आंख, कान, नाक, दन्त और त्वचा में प्रकाशित होता है।

४४. शरीर दुःखों का केन्द्र है, गन्दगी से भरा हुवा है, अपमान और दोष आदि पैदा करता है, बिना एक क्षण की सूचना दिये ही चल बसता है, रोगों का घर, जरावस्था और नष्ट होने वाला है। इसलिये शरीर से मोह छोड़ देना चाहिये। पवित्र, अनन्त सर्वव्यापक आत्मा का चिन्तन करना चाहिये।

४५. एक मनुष्य परमात्मा की पूजा पुरुषार्थ

करता है, दूसरा धनार्थ करता है और तीसरा नौकरी के लिये करता है। पूजा एक ही है, कर्म भी एक ही है परन्तु भावना के अनुसार फल भिन्न भिन्न है। यह भावना है कि जिसका विचार करना चाहिये। परमात्मा भावना के अनुसार फल देते हैं। वे मनुष्यों के कर्मों की उनकी भावना के अनुसार जांच करते हैं इसी लिये वह सर्वसाक्षी कहलाते हैं।

४६ कालीदास के विषय में कहा है कि उसके अज्ञान का पर्दा काली देवी की कृपा से दूर हुवा, वाल्मीकि के अज्ञान का पर्दा उसके स्वयं के उद्योग से दूर हुवा। कालीदास ने अपने पूर्व जन्म में अवश्य उद्योग किया है। परमात्मा की कृपा उस इच्छुक पुरुष को प्राप्त होती है जिसने पूर्व जन्म में धार्मिक कर्म किये हैं। तप सब कुछ कर सकता है, वह खोटे कर्मों के बुरे परिणामों को नष्ट कर सकता है, वह अज्ञान का पर्दा दूर कर सकता है, वह इन्द्रियों को निर्बल कर सकता है, वह मन के मल को पवित्र कर सकता है और मनुष्य को समाधि अवस्था प्राप्त कर सकता है।

४७. मल, विक्षेप और आवरण यह मन के तीन दोष हैं।

मल अपवित्रता और पाप को कहते हैं।

काम, क्रोध, लोभादि अपवित्रता कहलाती हैं और मन पर खोटे कर्मों का जो प्रभाव पड़ता है वह पाप कहलाता है।

मनके डावांडोल होने को विक्षेप कहते हैं, यह मन की चंचलता है। मन एक विषय से दूसरे विषय पर और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता रहता है, यह स्थिर कभी नहीं रहता।

आवरण अज्ञान के उस पर्दे को कहते हैं जो कि जीव और ब्रह्म के बीच में है।

मल की निवृत्ति निष्काम कर्म योग से होती है।

विक्षेप की निवृत्ति उपासना या पूजा से होती है।

आवरण की निवृत्ति ज्ञान से होती है। यही कारण है जिससे वेद कर्म उपासना और ज्ञान का वर्णन करते हैं।

४८. जब मल की निवृत्ति होती है तब मनुष्य का हृदय पवित्र हो जाता है।

४९. पवित्रता (शौच) योग का पहिला अंग है। जब शौच की प्राप्ति हो जाती है तब मोक्ष प्राप्ति की ओर प्राकृतिक झुकाव हो जाता है।

५०. यदि अन्दर वैराग्य उदय हो तो यह चित्त शुद्धि का चिन्ह है।

५१. वह वस्तुयें जिन से पहिले आनन्द मिलता था और अब तुम्हारे दुःख का हेतु हैं जब ऐसा विचार हो तो यह वैराग्य का चिन्ह है।

५२. पूर्ण चित्त शुद्धि ज्ञानानन्तर प्राप्त होती है।

५३. निराहारी मनुष्य के भी विषय तो निवृत्त होते हैं परन्तु रस नहीं छूटता, परन्तु स्थिर बुद्धि वाले का तो परमात्मा को देख कर रस (विषया सक्ति) भी छूट जाता है।

५४. परम पुरुष को देख कर जीव बन्धनमुक्त हो जाता है।

५५. यह दम्भ मत करो कि हम बहुत जानते हैं। अपने दोष, निर्बलता और अज्ञान को दूसरों के समक्ष स्वीकार करो फिर तुम वास्तव में बुद्धिमान् हो जाओगे।

५६. तुम भक्ति, ज्ञान और निष्ठा चाहते हो। शुष्क ज्ञान, तर्क और न्याय से तुम्हारी आत्मा को लाभ नहीं पहुंच सकता यह तो तुम्हारे अहंकार को और भी बढ़ावेंगे।

५७. आदि में केवल सत्य था (एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म)

५८. वह जो सब वस्तुओं को ब्रह्म में देखता है और ब्रह्म को सब वस्तुओं में देखता है वास्तव में ज्ञानी है। वह मनःशान्ति को प्राप्त करता है।

५९. बचपन में चंचलता और मूर्खता होती है, यूवावस्था में काम और अहंकार होता है और वृद्धावस्था में तृष्णा की वृद्धि और चिन्ता रहती है तब तुम मोक्ष के लिये कब प्रयत्न करोगे ?

६०. पुरुषार्थ दो प्रकार का होता है शास्त्रानुसार और अशास्त्रिक। शास्त्रानुसार पुरुषार्थ करने से शीघ्र सिद्धि होती है।

६१. संसार रूपी समुद्र को पार करने के दो रास्ते हैं एक सत्संग और दूसरा सत्शास्त्रों का विचार।

६२. भोग, जीवन, जाति, विद्या और मृत्यु यह पांच चीजें माता के गर्भ में ही नियत करदी जाती हैं और यह अटल रहती हैं।

६३. जिज्ञासु को दया, धृति, सन्तोष और विचार पूर्वक वैराग्य इन गुणों की वृद्धि करनी चाहिये।

६४. यदि विषय भोगों के लिये अन्तःकरण में अशुभ इच्छा उत्पन्न हों तो यह अपवित्र मन का चिन्ह है और अन्तःकरण से विषय भोग की इच्छा की निवृत्ति शुद्ध अन्तःकरण का चिन्ह है।

६५. प्रारब्ध की बली ज्ञानी है। ज्ञानी को भी प्रारब्ध का भोग भोगना पड़ता है। पुरुषार्थ की बली प्रारब्ध है। दृढ़ पुरुषार्थ प्रारब्ध को नष्ट कर देता है।

६६. शिष्य में वैराग्य होना चाहिये, उसमें शिष्य भाव और सेवा भाव भी होना चाहिये। उसमें भगवान् की भक्ति का भाव होना चाहिये। वह तपस्वी और दोषान्वेषण बुद्धि से रहित होना चाहिये।

६७. महर्षि मार्कण्डेय दृढ़ पुरुषार्थी होने के कारण यमराज से लड़े और अमरत्व पद को प्राप्त हुये। वह शिवजी की कृपा से चिरंजीवी होगये।

६८. देखो संसार में पुरुषार्थ कैसा करामाती है जिसके प्रताप से विश्वामित्र जी पहिले राजर्षि और फिर ब्रह्मर्षि हो गये। उन्होंने पुरुषार्थ से त्रिशंकु स्वर्ग नामक तीसरी सृष्टि की रचना करदी।

६९. योगवासष्ठि में व्यास जी राम को पुरुषार्थ का उपदेश देते हैं। मनुष्य अपने लक्ष्य का स्वामी होता है क्योंकि वह अपना लक्ष्य स्वयं बनाता है। पूर्व जन्म के पुरुषार्थ को प्रारब्ध कहते हैं। प्रारब्ध पर भरोसा करने से तामसी और आलसी हो जाता है।

बस एक बूंद

[ले० श्री प्रेम पथ पथिक]

हे राम ! नयनाभिराम ! जरा अपनी अनोखी झांकी तो दिखा जा। देख कब से मेरे तृषित नेत्र तेरे ललित लोचन के दर्शनार्थ लालायित हैं। मेरे प्यारे ! जरा अपनी मोहिनी मूर्त्ति की छटा तो दिखा जा। ओह ! अब सहा नहीं जाता। आखें थक गईं। इसके आँसू भी सूख गये नहीं तो कम से कम रोकर भी सन्तोष कर लेता। पर विवश हूं इन अभागे नेत्रों ने भी ऐन मौके पर धोखा दिया। पर प्यारे ! जरा तुम्हीं तो बताओ मेरा इसमें क्या अपराध है। क्या मैंने तुम्हें हृदय से नहीं पुकारा? क्या मेरे करुणा क्रन्दन तेरे कानों तक नहीं पहुंचे ? चाहे जो हो मैं

तुम्हें नहीं छोड़ सकता, तुम भले ही मुझे दीन जान त्याग दो। मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता, मैं तो आशारूपी अब्धि तट पर अपने जीवन का बलिदान कर दूंगा क्योंकि मैंने सुन रक्खा है कि:-

राम नाम रटते रहो, जब लग घट में प्रान।
कबहुंक दीन दयाल के, भनक पड़ेगी कान॥

ऐ मेरे जीवन विटप के सुन्दर पुष्प! जरा अपनी सुवासित सुगन्ध तो मेरी नासिका तक पहुंचा दे। ओह! अब सहा नहीं जाता। हृदय टुकड़े २ हुआ चाहता है। हृत्तंत्री के मृदु तार की झंकार धीमी पड़ गई है। आँखों से दिखाई नहीं पड़ता, कानों से सुन नहीं पड़ता। क्या अब भी सुधि न लोगे? क्या तुम्हें यही मंजूर है कि मेरा अस्थि पंजर भी न रह जाय? अजी खिलाड़ी! यदि तुम्हें यही खेल खेलना है तो एक बार अपने मुखारविन्द से कह भी तो दो। ओह! घड़ियां गिनते २ थक गया पर अहिल्योद्धारक राम का दर्शन न हुआ। क्या तुम्हें यही अभिलषित है कि मैं अपने आधुनिक अस्तित्व को खो ही दूं तब ही तुम मिलोगे? ऐ निर्दयी सीतापते! मेरी दशा पर जरा तरस खा और इस पतित की सुधि ले ले। भला तुम्हारा नाम तो पतित पावन है फिर इतनी देर क्यों लगाते हो? मैं तो पतितातिपतित बनने को भी तैयार हूं। मेरे दुलारे राम! अब देर न लगाओ अब सहन नहीं होता। आओ और जल्दी आओ। फौरन से पेश्तर आओ नहीं तो बस तुम्हारा एक पतित चला। हे मेरे नयनों के तारे राम! तुम्हारे लिये तो ये खेल है पर मेरे प्राण अब छूटना ही चाहते हैं। अजी प्राणाधार! ऐसा खिलवाड़ कैसा जो प्राणों पर आ पड़े। प्यारे एक बार और केवल! एकबार अपनी छबीली छटा दिखादे और इन चिर तृषित नेत्रों को प्रेम प्याला का बस एक बून्द पिला दे।

देव के प्रति।

[ले० श्री स्वामी अभयानन्द जी]

दया कर दुखियों पर हे देव!
सुनादो मुरली की वह तान;
जिसे सुन हो जावें सुर मस्त,
पड़े फिर निर्जीवों में प्रान॥

अबलता होवे सारी दूर,
सबल हों, भागे भय का भूत;
धर्म हित साधे रह कर मौन,
बने भूमां के सफल सपूत॥

ध्वनी से निकले जिसकी सौम्य-
कर्म और भक्ति की गुञ्जार;
ज्ञान से हो हृदय भर पूर,
प्रेम भी हो आवे साकार॥

भैरवी नाचे भैरव संग,
मनाकर उरमें अन्त आनन्द;
शक्ति, मां हो करके उनमत्त,
मिटा दे दुनियां के दुख द्वन्द॥

सदय हो सुनो श्री भगवान,
"अभय" की सीधी सरल पुकार;
सुना दो मस्ताना वह राग,
बजा कर फिर मुरली एकबार॥

श्री पापा जी महाराज के सदोपदेश।

[ले० श्री इन्द्र जी ब्रह्मचारी]

हृदय के भावों को उन्हीं के सामने प्रकट करो जो तुम्हारे भावों के आलोक में विचरण करते हैं।

जो तुम विचार करते हो वह सब ठीक है किन्तु इन्हीं विचारों को स्थाई बनाओ इसीमें तुम्हारा बड़प्पन है।

मेरे वस्त्र को श्वेत बनाने में केवल ज्ञान और बुद्धि ही साथ देगी क्योंकि प्रेम का समुद्र इन्हीं में रहता है। इन्हीं में अविचल, नित्य तथा सौम्य, शांति निवास-स्थल बनाती हैं।

पाप और पश्चात्ताप दुख के मार्ग हैं, ज्ञान और बुद्धि शाँति के मार्ग का निर्माण करते हैं। अभ्यास का जो निकट मार्ग है, उससे पता चल जायगा कि परमानन्द का कहाँ से आरम्भ होता है और पीड़ा तथा विषाद का बन्द होना कैसे आरम्भ होता है।

जब तक हम अज्ञानता के मार्ग में चल रहे हैं त्रुटियों के दाग का लगना बन्द नहीं होगा। स्वार्थ के टेढ़े रास्ते की निशानी अपवित्रता है जिसमें बहुत हृदय वेदना होती है और निरुत्साह के डंक ऊपर से पड़ते हैं।

जिस हृदय में ईमानदारी, विश्वास, दया और सच्ची समृद्धि की प्राप्तेच्छा प्रचुर प्रमाण में वर्तमान होती है उसी को समृद्धि के अनुभव करने का अधिकार है।

जिस हृदय में ये गुण नहीं वह समृद्धि को जान ही नहीं सकता।

मनुष्य को सदा सावधान रहने की आवश्यकता है।

हृदय को सदा शिक्षित रखने की आवश्यकता है।

त्याग मनुष्य को उच्चता की ओर ले जाता है। त्यागी में विवेक शक्ति की स्फुरणा शीघ्र ही होने लगती है।

प्रतीक्षा किस बात की? तुम कहते हो प्रेरणा की। अरे यार प्रेरणा तो सदैव हो रही है। ज़रा आगे की ओर बढ़ो तो सेही सभी बातें स्पष्ट हो जांयगी।

जिस मनुष्य का मस्तिष्क, बुद्धि, हृदय अपने अधिकार में नहीं वह दूसरे के मस्तिष्क बुद्धि, एवं हृदय पर प्रभाव नहीं डाल सकता और न दूसरों की मनोवृत्ति पर शासन ही कर सकता है।

हमेशा दृढ़ और तत्पर रहो, उपयोगी विचारों के लिये ही अपना समय खर्च करो, सदा प्रशन्न रहो, धीरे धीरे उस स्थान तक पहुंच जाओगे। जल्दी करने से गोल माल होने का डर है।

मनुष्यता इसीमें है कि वह कल्याण को सामने रख कर कार्य का पालन करता रहे। क्षणिक उत्तेजना से कुछ नहीं होने का। स्थायी संयम की आवश्यकता है। संयम अभ्यास का नाम है। अभ्यास करो तुम्हें सफलता मिलेगी, अभ्यास का परिणाम सफलता ही है।

"ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय" के

महामंत्र से ध्रुवने श्री मंगलमय भगवान् का साक्षात दर्शन किया था। क्या इस मंत्र के द्वारा तुम अपनी त्रुटियों को नहीं भगा सकते।

The meeting point of God and man is love.

देखो न, रामा और गोपाने प्रेम की उपासना के द्वारा भगवत् दर्शन किया था।

तुम इसका ध्यान रखो कि मंगलमय ईश्वर तुम्हारी सदैव रक्षा करते हैं। जगत माता से कहो, "आओ, माँ मुझे दर्शन दो। मेरे सारे कामों को तुही संभाल" माँ के ऊपर ही सारे कर्म छोड़दो।

मनुष्य आदतों का गुलाम है वह सभी जानता है। किन्तु संस्कारों की प्रबलता से कल्याण कारक अनुकूल कामों का स्वागत ही नहीं कराता।

एक दिन इन्द्र सर्प, बिच्छु, बिसखपरे के स्वरूप को देख कर डर गया। उसके साधन कुटीर में ये विषैले जानवर प्रवेश कर गये, श्री श्री पापाजी ने कहा ये भी प्रभू के रूप हैं। डरो मत हृदय से स्वागत करो। प्रेम में मस्त हो जाओ। सर्प, बिच्छु भी भगवान के रूप हैं। उन्हें देखकर उनकी विचित्रता पर, भगवान की विभिन्न रूपता को देख कर खुश होओ। डरने की बात नहीं।

ये अन्धे हैं, गुलाम हैं, क्षुद्र और सांसारिक हैं जो झूठ बोलकर अपनी सुशीलता की रक्षा करते हैं - ऐसे मनुष्य सदैव प्रभु की मंजुल मूर्त्ति से वंचित रहते हैं।

स्नेह से समता के भाव उत्पन्न होते हैं स्नेह हृदय की स्वच्छता से होता है। स्वच्छता आती है मनोवृत्तियों के विरुद्ध आचरण करने से।

उपासना वही कर सकता है जिसने अपने को शुद्ध बना लिया है।

सांसारिक आदमियों के बाहरी व्यवहार पर विश्वास मत करो। उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध भी मत रक्खो। इसके मानी यह नहीं कि उनसे घृणा करो। किन्तु हृदय से यह समझो कि भगवान के ये भी स्वरूप हैं जो अपनी आत्मा की विरुद्धताओं का स्वागत करते हैं।

साधन में ये विघ्न करते हैं:-

(१) स्वास्थ्यका अभाव
(२) खान पान में असंयम
(३) संदेह
(४) सद्गुरु का अभाव
(५) नियमानुवर्तिता का अभाव।
(६) प्रसिद्धि
(७) कुतर्क
(८) स्थान (चेष्टा का छोड़ देना)
(९) अल्प में संतोष
(१०) कामना
(११) ब्रह्मचर्य का अभाव
(१२) कुसंगति
(१३) परदोष दर्शन
(१४) सांप्रदायिकता

पवित्र प्रेम की उपासना से मनुष्य अमर होता है। प्रेम सत्य की स्थिरता से उत्पन्न होता है।

स्पष्ट भाव से अपने जीवन को स्थित करो गोल माल मत करो। संयम की रक्षा के लिये बड़े बड़े कठोर से कठोर नियम बनाओ। जब तब वह नियम तुम्हारे स्वभाव रूप में परिणित न हो जाय, उसे मत छोड़ो। यह ध्यान रखो यही संयम तुम्हें

एक दिन योग्य बनादेगा।

जीवन का कुछ ठिकाना नहीं। अपने सारे कामों को ख़तम करके कहीं एकान्त शान्त में स्थायी रूप से स्थित होकर भगवान को याद करो।

प्रातःकाल ब्रह्म महूर्त में उठकर तत्व चिन्तन करो यदि उस वक्त नींद आती हो तब भी उठकर भगवान को याद करो। यदि थकावट हो तब भी उठो आवश्यकता पड़ने पर दिनमें सो सकते हो।

ऐसे मनुष्य का दर्शन मत करो जिसके दर्शन से तुम्हारे हृदय में घृणा के भाव उठते हों। सभी परिस्थितियों, सभी दशाओं, सभी रूपों में भगवान् की सत्ता का अनुभव करो। यह विश्व उन्हीं का है। क्रोधी, कामुक, क्षुद्र, बुद्धिमान, विद्वान, महात्मा भगवान् के ही रूप हैं। सब का सम्मान करो।

जो भी कार्य करो भगवान् का कार्य समझ कर करो। अपना नहीं, अपना समझोगे तो कष्ट होगा। वह कार्य चिन्ता का रूप धारण करके तुम्हें खा जायगा।

अपनी समस्त कठिनाइयों में श्रीभगवान् की छवि का दर्शन करो। वह तो हमेशा दिखाई पड़ता है

लिख कर तथा संकेत द्वारा अपने भावों को प्रकट करने से मौन में विघ्न होता है अतः उसे भी बन्द करना चाहिये।

वाणी का संयम जब तक पूर्ण न हो जाये मौन रखो कभी बोलो भी तो रात में किन्तु भगवत् विषय पर।

त्याग के माने हैं जीवन को सौंप देना। यानी अपनी सारी शक्तियों को दे देना। शक्तिदान ही महादान है। चाहे किसी भावना से क्यों न हो त्याग होना चाहिये। यही त्याग मनुष्य को महान बनाता है।

स्पष्टता में भी अपनी शील रक्षा का ध्यान रखो। स्पष्टता ही आवश्यक है शेष तो निरर्थक है।

हृदय को खोल दो किन्तु मुँह को चुपरखो।

यदि प्रेम के स्वागत करने की इच्छा है तो तुम्हें संयम के साथ आगे की ओर बढ़ना होगा। हृदय की अशुद्धता में प्रेम की रक्षा नहीं होती।

विचार विनिमय (Thaughts exchange) के बहाने बातें करना गप्पें लड़ाना ठीक नहीं।

हमेशा लक्ष को रख कर कार्य का पालन करो। तुम्हें सफलता होगी।

निरन्तर चिन्तन का नाम श्रुति योग है। यह निदिध्यासन के द्वारा अभ्यास होगा शाँति के साथ साथ आगे बढ़ो। तुम्हें एक विचित्र शांत भाव की उपलब्धि होगी।

कर्तव्य पालन में वही समर्थ होता है जिसके संस्कार शुद्ध होते हैं।

हृदय के भावों को सबसे कहने से क्रियात्मक शक्ति में दोष उत्पन्न होता है।

ज्योंही ज्ञान का उदय होता है। यानी यथार्थता का बोध होता है त्यों ही मनुष्य के हृदय से समता के भाव फूट पड़ते हैं।

मानसिक क्षेत्र की विस्तीर्णता पर ध्यान दो तुम्हारा मानसिक सालस्य नष्ट होगा निश्चय समझो।

झुंझलाहट छोड़ो, त्याग का पल्ला पकड़ो। सभी महात्माओं, महापुरुषों ने त्याग मार्ग का अनुसरण किया है।

धर्म क्या है ? धर्म के मुख्य कर्तव्य क्या हैं ?

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती]

सनातन पवित्र आर्य धर्म का महान् सिद्धांत है कि आत्मा परमात्मा से उत्पन्न हुई है। हमारी आत्मा परमात्मा का एक अंश है और हमारी आत्मा में परमात्मा की सत्ता व्याप रही है, इतना ही नहीं, हमारी आत्मात्मा के परमा में से उत्पन्न होने से सर्व शक्तिमान परमात्मा में जो महान् गुण अलौकिक शक्ति है, अद्भुत आकर्षण, परिपूर्ण सौन्दर्य, अनन्त ज्ञान, अखण्ड ऐश्वर्य, पूर्ण स्नेह, आदि अन्त रहित अमरत्व एवं अखण्ड आनन्द है, वेही सर्व गुण हमारी आत्मा में और जगत् के सब जीवों में स्वभावतः अतिशय परिमाण में विद्यमान हैं, क्योंकि हम परमात्मा में से पैदा हुए हैं, हमारी आत्मा में परमात्मा व्याप रहे हैं और परमात्मा की सत्ता के कारण ही हमारा जीवन है इससे परमात्मा के सब गुण तथा सर्व प्रकार की शक्तियाँ हममें विद्यमान हैं। उनमें अन्तर केवल इतना ही है कि परमात्मा सम्पूर्ण है वह महासागर रूप है और हम एक बून्द के समान है। वह स्वतन्त्र है और हम माया के आधीन हैं और वह सृजनहार पालक पिता हमारा स्वामी है और हम उसके सेवक हैं। प्रकृति से ही ऐसा होने से और स्वभावतः हमारी आत्मा में उपरोक्त गुणों के होने से जीव मात्र की प्रकृति ही ऐसी होती है कि बिना किसी कारण के स्वभाविक रीति से ईश्वर की ओर खींचा जाता है। इस प्रकार से जीव और ईश्वर के बीच जो स्वभाविक आकर्षण होता है उसे भक्ति कहते हैं और इस आकर्षण को बढ़ाने के लिये अन्तर के तथा बाहर के जो उपाय हैं उसका नाम धर्म है। ये उपाय भिन्न भिन्न प्रकार के तथा अनेक हैं, किन्तु उन सब का मुख्य हेतु एक ही है और वह यह है कि सर्व शक्तिमान् परमात्मा को प्रसन्न करो, क्योंकि परमात्मा के प्रसन्न होने पर ही हमारी आत्मा तृप्त हो सकती है और तभी सब जीवों को आनन्द मिल सकता है। इससे परम कृपालु परमात्मा की ओर आकर्षित होना और उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करना ही हमारा कर्तव्य है। उनमें पहिला कर्तव्य सर्व व्यापक अविनाशी ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना है। दूसरा कर्तव्य बिना किसी स्वार्थ के स्वाभाविक रीति से जगत् के सब जीवों का कल्याण करने में निरत रहना है। तीसरा कर्तव्य माया को मिथ्या समझ कर, शरीर को क्षण भंगुर, विषयों को तुच्छ समझकर, सत्य वस्तु को पाने के लिये अपने मन को जीतना है। धर्म के नाम से जगत् में जितनी प्रकार की क्रियायें की जाती हैं उन सब का जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है, ऊपर के तीन कर्तव्यों में समावेश हो जाता है।

इससे महात्मा कहते हैं कि शास्त्र ज्ञान से नाम स्मरण से, ध्यान से, तथा दूसरी अनेक प्रकार की क्रियायों से ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना हमारा सर्व प्रथम कर्तव्य है। इसके पश्चात् ज्ञान को ठीक रख सकें, उसे अधिक उपयोगी बना सकें और उसका इस जीवन में ही लाभ उठा सकें। इसके लिये जगत के सब जीवों के साथ उदारता से व्यवहार करना, सबके दोषों को क्षमा करना, सब का भला करना, सब पर आत्म दृष्टि रखना

और महान प्रभु के लिये तन मन तथा धन से प्रभु के बालक जो मनुष्य हैं उनकी सेवा करना तथा सब जीवों के कल्याण में रहना ही हमारे पवित्र धर्म का दूसरा कर्तव्य है।

अनन्तर जीवन में अनुभव किये हुए ईश्वरी ज्ञान से तथा यदि जगत में जीवों की सेवा की हो तो उनके आशीर्वाद से, सेवा के बल से उत्पन्न आत्मिक शान्ति से और ज्ञान तथा सेवा इन दोनों के संयोग से एक प्रकार का जो आकर्षण पैदा होता है, उस आकर्षण से आकर्षित परम कृपालु परमात्मा की कृपा से मन ठहरने लगता है। इस समय पुरुषार्थ करके सब प्रकार के विषयों में से उसे पीछे लौटा कर शान्त करना तथा मन, वचन और कर्म से पाप वासना छोड़कर जीव को प्रभुमय करना और सुख दुःख में हार जीत में तथा रागद्वेष में समान वृत्ति रख कर सदा सहज समाधि की जैसी स्थिति में रहना, यह हमारे उत्तम धर्म का महाकल्याणकारी तीसरा कर्तव्य है। इन तीनों कर्तव्यों को ठीक से पालन करने का नाम धर्म है। इन तीन कर्तव्यों को सीखने के लिये ही अनेक प्रकार के कर्म काण्ड, भक्ति, ज्ञान और शास्त्र हैं।

इससे भाइयो! नाच तमाशे में थोड़ी देर के लिये मूर्खों को प्रसन्न करने के लिये ढोंग रचने में, प्राचीन काल से चले आते हुए कपोल कल्पित आचार विचार में और मान प्राप्त करने के लिये तथा पेट भरने के लिये दम्भिकों के बिछाये हुए स्वार्थ की जाली में न पड़ कर, हृदय में भगवत् आवेश आवे, सर्व शक्तिमान महान् ईश्वर का सच्चा ज्ञान हो, जगत के जीवों की सहायता कर सकें और अपने मन को काबू में रख सकें ऐसे प्राचीन ऋषियों के पवित्र सत्य धर्म का पालन करना सीखो।

वासना।

गतांक से आगे।

[ले० श्री महात्मा "राम"]

मलिन वासना की निवृत्ति जैसे १० वें अंक में कहे हुए उपायों से बतलाई गई है तैसे पतंजलि भगवान् ने योग शास्त्र में भी मलिन वासना की निवृत्ति के उपाय बतलाये हैं वह निम्नलिखित है।

सूत्र-'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्या पुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्' ॥

मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, यह चार प्रकार की शुभ वासना है।

धन संपत्ति युक्त सुखी प्राणियों को देखकर मन में ऐसा भाव होवे कि यह सब हमारे ही बान्धव हैं अर्थात सुखियों के साथ मित्र भाव होवे इसको मैत्री कहते हैं। और दुखी प्राणियों को देख कर जैसे हमारे लिये किसी प्रकार का दुःख न होवे तैसे इसको भी दुःख नहीं होवे ऐसा भाव करना और यथा शक्ति उसके दुःख को दूर करने का प्रयत्न भी करना इस

को करुणा कहते हैं।

पुण्यवान् धर्मात्मा पुरुषों को देख कर मन में प्रसन्न होना मुदिता कही जाती है:-

पापी दुष्टों से जो उदासीन रहना है इसे उपेक्षा कहते हैं जैसे कबीर जी ने कहा है कि:-

कबीर तेरी झोपड़ी गल कटियन के पास।
जे करें ते भरेंगे तू क्यों भया उदास॥

इन चारों भावनाओं के अभ्यास से राग, द्वेष, असूया, मद, मात्सर्य आदिकसर्व प्रकार की मलिन वासना दूर हो जाती हैं।

अथवा श्रीमद्भगवद्गीता के षोडष् अध्याय में कही हुई दैवी सम्पदा के अभ्यास से भी आसुरी सम्पत्ति रूप मलिन वासना की निवृत्ति होती है।

अभयं सत्व संशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेज क्षमा धृतिः शौच मद्रोहोनाति मानिता।
भवंति संपदं दैवी मभिजातस्य भारत॥
दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरीमता॥

निर्भयता, मन की शुद्धि, ज्ञान व योग में एक निष्ठा, दान देना, इंन्द्रिय संयम्, यज्ञ करना स्वध्याय करना, तप करना, सरल रहना, अहिंसा सत्य बोलना, अक्रोधी, त्याग, शान्ति, चुगली नहीं करना, सब प्राणियों पर दया, विषयों में निरसता, नम्रता, लज्जा, अचपलता, तेजस्विता, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, निर्वैरता, और निर्मानता ये लक्षण हेभारत! दैवी सम्पत्ति में जन्म लेने वालों के होते हैं। और हे अर्जुन! दैवी सम्पत्ति तो जीव के बन्धन को छुड़ाने वाली होती है और आसुरी सम्पत्ति बन्धन को दृढ़ करती है और गीता के १३ अध्याय में भी श्रीकृष्ण भगवान् ने ज्ञान के साधन कहे हैं उनके अभ्यास से भी मलिन वासना नष्ट होकर ज्ञान होता है।

'अमानित्व मदंभित्व महिंसा क्षांतिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्य मनहंकार एव च।
जन्म मृत्यु जराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्॥
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्र दार गृहादिषु।
नित्यं च सम चित्तत्व मिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥
मयि चानन्य योगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्त देश सेवित्व मरतिर्जन संसदि॥
अध्यात्म ज्ञान नित्यत्व तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्त मज्ञानं यदतोन्यथा॥

अमानिता, अदंभिता, अहिंसा, क्षमा, मन वाणी का सीधापन, आचार्य सेवा, बाहर भीतर की शुद्धि, स्थिरता, मन इन्द्रियों का निग्रह, इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य, निराभिमानता, जन्म बुढ़ापा और व्याधि आदिकों के दुःखों तथा दोषों का दर्शन 'चिन्तन' पुत्र, स्त्री, गृह धन आदिकों में ममता न करना, इष्ट तथा अनिष्ट में सदा समान चित्त रहना, एक परमेश्वर में अनन्य योग पूर्वक अव्यभिचारिणी भक्ति, पवित्र और एकान्त स्थल में रहने का स्वभाव, विषयासक्त मनुष्यों के समूह से अप्रीति, आत्मानात्मा के ज्ञान को देने वाली अध्यात्म विद्या का नित्य प्रति अभ्यास, और तत्व ज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा का साक्षात्कार करना यह उपरोक्त लक्षणों वाला तो ज्ञान है और इसके विपरीत सब अज्ञान है। इन के साधनों का अभ्यास करने से भी मलिन वसना नाश होती है।

इन सब साधनों को करने वाला अधिकारी पुरुष अजिह्वत्वादि षट् धर्मों का यत्न पूर्वक अभ्यास करे।

अजिह्वः पंडकः पंगुरंधो बधिर एव च।
मुग्धश्च मुग्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः॥

अजिह्व, पंडक, पंगु, अंध, बधिर, मुग्ध, इन षट् धर्मों के अभ्यास करने से यतनशील संन्यासी मुक्ति को प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है।

अजिह्वत्व का लक्षण।

'इदमिष्टमिदंनेति योऽस्तन्नपि न सज्जते।
हितं सत्यं मितं वक्ति तमजिह्वं प्रचक्षते॥

जो यति खाद्य पदार्थों को भक्षण करता हुआ भी यह अन्न स्वादु है यह अस्वादु है इस प्रकार का वचन नहीं कहता तथा हितकारी, सत्य और प्रमित यानी थोड़े शब्दों में बोलता है वह यति अजिह्व कहा जाता है।

पंडक का लक्षण।

अद्य जातां यथा नारी तथा षोडष वर्षिकीम्।
शत वर्षां च षोडष्ट्वा निर्विकार स पंडकः॥

जैसे आज के दिन में जन्मी हुई कन्या को देख कर तथा शत वर्ष की अति वृद्धा स्त्री को देख कर मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता तैसे षोडष वर्ष की युवा स्त्री को देख भी जिसका मन निर्विकार रहता है उस संन्यासी को पंडक कहते हैं।

पंगु का लक्षण।

भिक्षार्थमटनं यस्य विण्मूत्र करणाय च।
योजनान्न परं याति सर्वथा पंगुरेव सः॥

जिस यति का भिक्षामात्र को गमनागमन होता है अथवा विष्टा मूत्र के परित्यागार्थ जाना होता है और जो एक योजन से अधिक मार्ग नहीं चलता वह यती सर्वथा पंगु कहा जाता है।

अन्धापन।

'तिष्ठतो व्रजतोवापि यस्य चक्षुर्न दूरगम्।
चतुर्हस्तां भुवं त्यक्त्वा परिव्राट्सोऽन्धउच्यते॥

चलते हुए अथवा बैठे हुए जिसकी नेत्र दृष्टि दूर नहीं जाती, किन्तु ४ युग पर्यन्त ही जाती है वह संन्यासी अन्धा कहा जाता है। दोनों हाथ फैलाने से जितना स्थान घेरें वह स्थान एक युग कहा जाताहै।

बधिरत्व का लक्षण।

हिताहितं मनो रागं वचः शोकावहं च यत्।
श्रुत्वापि न शृणोति यो बधिरः स प्रकीर्तितः॥

जो पुरुष हर्ष को उत्पन्न करने वाले वचन को सुन कर तथा शोक को उत्पन्न करने वाले वचन को सुन कर भी नहीं सुनता है अर्थात् अनुकूल तथा प्रतिकूल वाक्यों को सुन कर जिसे हर्ष शोक नहीं उत्पन्न होता वह यती बधिर कहा है।

मुग्धत्व के लक्षण।

सान्निध्ये विषयाणां च समर्थोऽविकलेंद्रियः।
सुप्तवद्वर्तते नित्यं सभिक्षुर्मुग्ध उच्यते॥

विषय भोगों के समीप प्राप्त होने पर भी जो संन्यासी सर्व इन्द्रियों से समर्थ हुआ भी उन विषयों में सुषुप्त पुरुष के समान उपराम रहता है उसको मुग्ध कहते हैं। इस प्रकार षट्धर्मों का अभ्यास करते हुए चिन्मात्र वासना का अभ्यास करे।

चिन्मात्र वासना।

यह नाम रूपात्मक सर्व जगत चैतन्य में कल्पित होने के कारण स्वतः सत्तास्फुर्ति से रहित है। अतः अधिष्ठान चैतन्य के सत्तास्फुरण पूर्वक ही जगत का सत्तास्फुरण होता है। इस प्रकार जगत् में नाम रूप दोनों अंशों का मिथ्यात्व निश्चय करके उपेक्षा यानि त्याग करके सर्वत्र परिपूर्ण अस्ति, भाति, प्रिय, रूप अधिष्ठान चैतन्य मैं हूं इस प्रकार की निरंतर भावना करना चिन्मात्र वासना कही जाती है। अभिप्राय यह है की समस्त

जगत में पांच अंश हैं।

'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥

अस्ति अर्थात् हैपना, भाति यानी दीखता है, प्रिय यानी सुन्दरता खूबसूरती, रूप यानी लाल पीला हरा, और नाम जिससे हरेक चीज का ज्ञान होता है जैसे बड़, पीपल, आम इत्यादि नाम हैं। यह पांच अंश ही सर्व जगत में ओत प्रोत हो रहे हैं इनमें आदि के जो अस्ति, भाति, प्रिय यह तीन अंश हैं ये तो परब्रह्म परमेश्वर के हैं। और नाम तथा रूप ये दो जगत के अंश हैं।

परमात्मा के सत्यत्व का अंश तो सब पदार्थों में अस्तित्व है और चैतन्यत्व का अंश सब पदार्थों में प्रतीति होना है और आनन्द रूपता का अंश प्रिय पना है। हरेक पदार्थ में सुन्दरता भगवान् के आनन्द का अंश है और नाम तथा रूप यह दो वस्तु सब पदार्थों में कल्पित हैं इसलिये ये दोनों अंश मिथ्या हैं।

विकारो नाम ध्येयम्।

यह नाम ध्येय अर्थात् नामरूपात्मक सर्व पदार्थ विकार रूप ही हैं जैसे एक ही सुवर्ण के कार्य रूप में आने से अनेक कड़ा कुण्डलादिक नाम पुकारे जाते हैं इसी प्रकार एक चैतन्य में से अनेक सृष्टि बनती है। मुंडकोपनिषद् में लिखा है:-

'तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः, तथाक्षरात् विविधाः सोम्यभावाः प्रजायंते तत्र चैवापियंति

जैसे दीप्तिमान् अग्नि से हजारों चिनगारियां उत्पन्न होती हैं और वह चिनगारियां सामान्य अग्नि में लय हो जाती हैं। इसी प्रकार उस सत्य स्वरूप अक्षर पुरुष परमात्मा से यह समस्त विश्व उत्पन्न होता है और कार्य की सत्ता कारण से भिन्न कुछ नहीं होती किन्तु कार्य कारण रूप ही होती है इसलिये इस जगत् को चैतन्य का कार्य रूप होने से चैतन्य रूप करके ही चिन्तन करे और केवल चैतन्यमय ही चैतन्यमय भावना करे सब कुछ चैतन्य ही है इस प्रकार की भावना को चिन्मात्र वासना कहते हैं। यह चिन्मात्र वासना दो प्रकार की होती है। एक तो कर्ता कर्म करण इस त्रिपुटी के स्मरण पूर्वक चिन्मात्र वासना है और दूसरी त्रिपुटी के स्मरण से रहित केवल चिन्मात्र वासना है। जैसे इस सर्व जगत को मैं अपने मन से चिन्मात्र रूप जानता हूं इस प्रकार की भावना तो त्रिपुटी सहित चिन्मात्र वासना कही जाती है। इस चिन्मात्र वासना का संप्रज्ञात् समाधि कोटी में अन्तरभाव है अर्थात् इस चिन्मात्र वासना को ही योग शास्त्र वाले संप्रज्ञात् समाधि कहते हैं और कर्ता कार्य करण के स्मरण से रहित मैं चैतन्य रूप हूं इस भावना को केवल चिन्मात्र वासना कहते हैं। इसी चिन्मात्र वासना को योग शास्त्र वाले असंप्रज्ञात् समाधि कहते हैं।

यह ही चिन्मात्र वासना का स्वरूप शुक्लाचार्य ने बलि के प्रति कहा है।

'चिदिहास्तीह चिन्मात्र सर्वचिन्मय मेवतत्।
चित्यं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति संग्रहः॥

हे राजन्! यह सर्व जगत चैतन्य में ही ओत प्रोत हो रहा है जैसे पट में धागे हैं इसलिये यह जगत चैतन्य मात्र ही है, और तू भी चैतन्य रूप है तथा मैं भी चैतन्य रूप हूं और यह समस्त लोक भी चैतन्य हैं इस प्रकार चिन्मात्र वासना के अभ्यास से पूर्वोक्त मलिन वासना निवृत्त हो जाती है। मलिन वासना के नाश होने से अन्तःकरण की

शुद्धि होकर गुरु कृपा से ज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाता है और अज्ञान रूप अन्धकार का नाश हो जाता है। पश्चात् मुक्ति रूप फल को प्राप्त होता है। ओमिति ॥

अमृतविन्दु उपनिषद्।

अमृत विन्दू पनिषद् से जो जाना जाता है, वही रामचन्द्राख्य परम अक्षर हमारी परम गति है। वह हम दोनों की रक्षा करे।

मन दो प्रकार का कहा गया है-शुद्ध और अशुद्ध। जिसमें काम और संकल्प हों, वह अशुद्ध और जो काम रहित हो, वह शुद्ध मन है ॥ १ ॥

मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। विषयासक्त मन बन्धन का और निर्विषय मोक्ष का कारण कहा गया है ॥ २ ॥

क्योंकि मुमुक्षु के निर्विषय मन से मुक्ति कही गयी है, अतः मुमुक्षु को सदाही मन निर्विषय करना चाहिए ॥ ३ ॥

जब यह मन विषय रहित और स्थिर हो कर हृदय में उदासीनता को प्राप्त हो जाता है, तभी वह परम पद (सुलभ) है ॥ ४ ॥

तभी तक (मनको) रोकना चाहिए, जब तक हृदय में क्षय को न प्राप्त हो। बस, इतना ही यह ज्ञान और मोक्ष है; बाकी तो ग्रन्थों का विस्तार भर है ॥ ५ ॥

न तो चिन्त्य ही है और न अचिन्त्य ही है तथा चिन्त्य भी है और अचिन्त्य भी है। जब (मन) पक्षपात-रहित होता है, तब ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

स्वर से योग का सन्धान करे और अस्वर से पर की भावना करे। अस्वर भाव से भाव नहीं अभाव इष्ट है ॥ ७ ॥

वही निष्कल, निर्विकल्प और निरंजन ब्रह्म है। उस ब्रह्म को 'अहं' रूप जान कर निश्चय ही ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

निर्विकल्प, अनन्त, हेतु और दृष्टान्त से रहित, अप्रमेय, अनादि और शिव (कल्याण स्वरूप) परम (ब्रह्म) को जान कर (ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

न निरोध है और न उत्पत्ति है; न बन्ध है और न शासन है; न मोक्ष होने की इच्छा ही है और न मुक्ति ही है; यह परमार्थता है ॥ १० ॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में एक ही आत्मा को मानना चाहिए। स्थान-त्रय का अतिक्रमण करने वाले को बन्ध-मोक्ष नहीं होता ॥ ११ ॥

एक ही भूतात्मा प्रत्येक भूत (प्राणी) में व्यवस्थित है। वही एक प्रकार से और बहुत प्रकार से दीख पड़ता है, जैसे जल में चन्द्रमा ॥ १२

घट के लीन हो जाने पर जैसे घट-संभृत आकाश घट लीन होता है आकाश नहीं। इसी प्रकार जीव घट के समान है ॥ १३ ॥

घट के समान विविध आकार बार बार भिन्न होते हैं। उस के भंग को नहीं जानता वह सदा जानता है ॥ १४ ॥

जब तक शब्द-माया से आवृत है, तब तक पुष्कर में स्थित है। अन्धकार के नाश होने पर एकत्व ही है। (फिर वह) एक ही देखता है ॥ १५ ॥

शब्दाक्षर पर ब्रह्म है, जिसके क्षीण होने पर जो अक्षर है; इसलिये यदि आत्मा की शान्ति चाहे, तो विद्वान् उस अक्षर का ध्यान करे ॥ १६ ॥

दो विद्याएँ जाननी चाहियें-शब्द ब्रह्म और पर ब्रह्म। शब्द-ब्रह्म में पारंगत हो कर परब्रह्म को

पाता है ॥ १७ ॥

बुद्धिमान् पुरुष ज्ञान-विज्ञान के तत्व से ग्रन्थों का अभ्यास करके इस प्रकार उन्हें बिलकुल छोड़दे, जैसे अन्नार्थी भूसे को छोड़ देता है ॥१८॥

अनेक रँग की भी गौओं का दुध एक ही रँग का होता है। विद्वान् पुरुष ज्ञान को गौ के दुग्ध के समान देखते हैं ॥ १९ ॥

जैसे दूध में घी रहता है, इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी में विज्ञान रहता है। (इसलिये उसे) सदा मन रूपी मथानी से मथते रहना चाहिए ॥ २० ॥

ज्ञान रूपी नेत्र ले कर इसके अन्तर बहि में विचरण करे। जो निष्कल, निर्मल और शान्त ब्रह्म है, वह मैं हूं, ऐसा कहा गया है ॥ २१ ॥

सब भूतों का अधिवास जो सब भूतों में आधिपत्य से वास करता है और अनुग्रह करता है, सो वासुदेव मैं हूं, सो वासुदेव मैं हूं ॥ २२ ॥ ४ ॥

विश्वास की परम आवश्यकता।

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती]

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति श्रद्धा स्वांतस्थितमीश्वरं ॥

विश्वास वृक्ष के मूल के समान है। मूल बिना जैसे वृक्ष नहीं होसकता, वैसे ही विश्वास बिना मनुष्य मुक्ति नहीं पा सकता।

स्वर्ग की सीढ़ी की पहिली सीढ़ी विश्वास है।
सर्व सद्गुणों के खजाने की कुंजी विश्वास है॥

जैसे अन्धेरे जंगल में दीपक प्रकाश करता है तैसे ही विश्वास से ईश्वरी सत्यज्ञान मिल सकता है।

नौका बिना समुद्र पार नहीं किया जा सकता, ऐसे ही विश्वास बिना प्रभु के पास नहीं जाया जा सकता।

बीज से वृक्ष और फिर फल होता है, ऐसे ही विश्वास से ईश्वरी ज्ञान तथा मोक्ष रूपी फल होता है।

"अच्छा गुरु! धन व दीर्घ आयु मिलने पर भजन करूंगा" ऐसा जो कहते हैं उन्हें विश्वास नहीं है उन्हें कच्चा समझो।

जिसे तैरना नहीं आता वह पानी के पास जाने से डरता है, किन्तु जिसे आता है वह कूद पड़ता है, ऐसे ही जिसे प्रभु पर पूरा विश्वास नहीं है वही आस पास का संयोग देखा करता है। विश्वासी तो प्रभु के नाम पर एक दम कूद पड़ता है और संसार सागर को पार कर जाता है।

दर्पण यदि साफ न हो तो उस में मुख दिखाई नहीं पड़ता वैसे ही हृदय जब तक मलिन है तब तक विश्वास तथा सत्य मिल नहीं सकता।

विश्वास एक सेतु यानी पुल है जो पृथ्वी से बराबर मोक्ष मार्ग तक चला गया है।

पानी बिना वृक्ष जैसे फल नहीं देसकता वैसे ही विश्वास बिना मनुष्य को भी फल नहीं मिल सकता।

जान बूझ कर जो मनुष्य विश्वास रखने योग्य बात को नहीं मानता और सतसंग नहीं करता तब उस में जो कुछ रहता है वह भी चला जाता है।

महान् प्रभु को छोड़ कर जो लोग दूसरों की पूजा करते हैं उनको ओछे विश्वास वाला समझना चाहिये क्योंकि चाँदी के लिये जो तुम्हारे पीछे २ फिरता है उसे जब सोना मिलेगा तो वह तुम्हें छोड़ देगा, इसी प्रकार पूजा करने वालों का जब कार्य पूरा हो जाता है अथवा नहीं होता तब वे भी प्रभु

को छोड़ देते हैं ऐसे पूजन का कभी भी विश्वास मत करो।

विश्वास से हमारा प्रभुप्रेम बढ़ता है और विश्वास से प्रभु के लिये दुःख सहने की हमें शक्ति आ जाती है।

स्वच्छ जलमें जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, ऐसे ही विश्वास से जिनका हृदय शुद्ध हो गया है उनको ईश्वरीय सत्य मार्ग मिलता है।

जिस घर की नींव कमजोर होती है वह गिर पड़ता है ऐसे ही जिसमें विश्वास नहीं होता उसका काम भी प्रभु तक पहुंच नहीं सकता।

किसी भी प्रकार की अग्नि बिना दीपक जल नहीं सकती ऐसे ही विश्वास बिना कल्याण हो नहीं सकता।

अन्न से जैसे शरीर का पोषण होता है ऐसे ही विश्वास से आत्मा तुष्ट होती है। वृक्ष को हरा रखने के लिये जैसे सर्वदा जल देना चाहिये, ऐसे ही अपने विश्वास को दृढ़ करने के लिये शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये।

जो भगवान् पर भरोसा रखते हैं वे भाग्यशाली हैं क्योंकि वे शान्ति से रह सकते हैं और एकान्त शयन कर सकते हैं।

प्रायः धनी लोग सिक्का नहीं देते किन्तु चेक अथवा हुण्डी देते हैं इनको मनुष्य विशेष कर विश्वास पर ले लेते हैं, ऐसे प्रभु पर विश्वास रख कर हमें प्रभु के नाम की हुण्डी लेनी चाहिये।

कबूतर ऐसी डाल पर अपना घोंसला बनाता है जो गिर नहीं सकता और निश्चिंत हो कर फिरा करता है, ऐसे ही हम को विश्वास पूर्वक प्रभु रूपी डाल को पकड़ कर संसार के सब काम काज करना चाहिये।

मुर्दा को कपड़ा पहनाने से वह कुछ सुन्दर नहीं दिखाई पड़ता, ऐसे ही प्रभु पर विश्वास न रखने वाले मनुष्यों को भी मुर्दा के समान समझो, और उनके श्रद्धा रहित कर्मकाँडों को बाहरी शृंगार समझो।

याद रखो वेद, शास्त्र, पुराण इतिहासादिक और लौकिक वादी भी सब यही पुकार पुकार रहे हैं कि विश्वास करो। क्योंकि विश्वास के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, विचार तो करो जब बिना विश्वास से लौकिक व्यवहार की ही सिद्धि नहीं होती जैसे एक पैसे का साग लेने जाओ यदि कुञ्जड़ा तुम्हारा या तुम उसका विश्वास न करो तो खड़े रहो पैसा तुम्हारे पास और साग उसके पास। तो बतलाइये यहां की ही सुख सिद्ध नहीं हुई तो परम गति कहां?

इस से प्रिय पाठको विश्वास की सर्व प्रकार से परम आवश्यकता है।

"श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्"

चचंल मन।

[ले० श्रीद्वारकाप्रसाद जी विद्यार्थी]

इस असार संसार समुद्र में मनुष्य मनके चञ्चल होने से ही हर समय गोता खाते रहते हैं। कभी तो यह मन लालच की तर्फ दौड़ लगाता है, कभी सांसारिक विषयों की तर्फ दौड़ता है, कभी चोरी प्रभृति दुर्व्यसनों की तर्फ धावन करता है और कभी बाग बगीचों की सैर करना चाहता है। इस मनके नृत्यको देख कर ही रणक्षेत्र में उपदेश देते समय अर्जुन ने सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान्

से प्रश्न किया था कि:-

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ अ०६-३४ गीता

हे श्रीकृष्ण भगवान् ! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है, तथा बड़ा दृढ़ और बलवान् है, इसलिये जैसे वायु को रोकना परम दुर्लभ है वैसे ही इस मन को भी वशमें करना मैं परम दुर्लभ समझता हूं। जब इस तरह से अर्जुन मन के वश में होकर कहने लगा तब मोह को प्राप्त हुए अर्जुन को आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उसे स्वयं उपदेश दिया था कि:-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ गीता अ-६-३५
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ गीता अ-६-३६

हे महाबाहो अर्जुन ! निःसन्देह मन चंचल है और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! अभ्यास करने से और वैराग्य से मन वश में हो सकता है।

भगवान के नाम और गुणों का श्रवण, कीर्तन, मनन तथा विश्वास के द्वारा जप और भगवत् प्राप्ति विषयक शास्त्रों का पठन इत्यादिक चेष्टायें भगवत् प्राप्ति के बारम्बार करने का नाम अभ्यास है।

सांसारिक भोग क्षणिक और नाशवान् हैं, ऐसा समझ कर इस संसार के समस्त विषय भोगों में सत्ता, सुख, प्रीति और रमणीयता का न भासना ही वैराग्य कहलाता है। अतः अभ्यास और वैराग्य से मन को अवश्य ही वशमें करना चाहिये, क्योंकि मनको वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग और भगवत् प्राप्ति दुष्प्राप्य हैं, अर्थात् प्राप्त होना कठिन है और स्वाधीन मनवाले प्रयत्न शील पुरुष द्वारा साधन करने से योगादिक प्राप्त होने सहज हैं।

जैसे घोड़े की बागडोर को हाथ के वश में रखकर मनुष्य निर्विघ्नता से अपनी यात्रा कर सकता है वैसे ही मनको जीतने वाला मनुष्य भी सुगमता से संसार की यात्रा कर अन्त में परम पद को प्राप्त कर सकता है। किसी कवि ने कहा भी है:-

मन लोभी मन लालची मन चंचल और चोर।
मनके मते न चालिये पलक पलक मन और॥

इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि दुर्व्यसनादिकों की तर्फ दौड़ते हुए मनको हटा कर सर्व शक्तिमान, सच्चिदानन्दघन, अज, अविनाशी और सर्वभूतों के परमगति परमात्मा में लगावें-यही सुगम और सरल भगवत् प्राप्ति का सच्चा उपाय है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने भी गीता में अर्जुन के प्रति यही बात कही है, कि:-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्य युक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ गीता-अ. १२-२
येतु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्परा।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ गीता-अ. १२-६
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥ गीत अ. १२-७
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ गीता-अ. १२-८

हे अर्जुन ! मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन और ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन, अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं उनको मैं अतिश्रेष्ठ मानता हूं।

और जो मेरे परायण भक्तजन, संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ परमेश्वर को ही अनन्य ध्यान योग से ही निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, हे अर्जुन उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूपी संसार समुद्र

से उद्धार करने वाला होता हूं। इसलिये हे अर्जुन! तू मेरे में मन को लगा और मेरे में ही बुद्धि को लगा, इसके उपरान्त तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात् मुझको ही प्राप्त होगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

भजन

काया हरि के काम न आई॥ टेक॥
भक्ति भाव जहां हरि यश सुनियत,
तहां जात अलसाई॥ १॥
काम मनोरथ लोभातुर है,
तहां सुनत उठ धाई॥ २॥
जब लग प्रेम रंग नहिं परसत,
अन्ध भयो भरमाई॥ ३॥
सुरदास भगवन्त भजन बिन,
विषय परम विष खाई॥ ४॥

२

भज मन तुलसी रामकहोरी॥ टेक॥
सांझ परी तब गयो भवन में,
तुलसी सोच भयोरी।
गौवा बछरवा मेल खिरक पै,
ले सोटा सुसराल गयोरी॥ १॥
आगे नदिया अगम बहत है,
मुर्दा जात बहो री।
लकड़ी के धोके मुर्दे को पकड़ा,
वाही को पकड़ तुलसी पार गयोरी॥ २॥
और महलों के पास फिर आयो,
मारग नाहीं मिलोरी।
छज्जे के ऊपर सांप लटक रहो,
वाही को पकड़ तुलसी महल गयोरी॥
इतनो हेत तुम हमसों कीनों,
हरि सों क्यों न कियोरी।
चले जाओ पिया बसो बैकुण्ठा,
जहां रयको दरबार लगोरी॥ ४॥
तू तिरया मेरी ज्ञान की माता,
मो को ज्ञान दियोरी।
तुलसीदास बली जाऊं चरण पर,
मैं तो तिरया तेरी सेजना चढ़योरी॥ ५

३

साधो यह तन मिथ्या जानो॥ टेक॥
या भीतर जो राम बसत है साचो ताहि पहचानो।
यह जग है संगत सुपने की देख काहा अड़ानो॥
संगत हारे संग न चालें ताहि काहे लिपटानो॥
अस्तुति निन्दा दोऊ परहरी हरि कीर्ति उर आनो॥
जन नानक सब ही में पूरण एक पुरुष भगवानो॥

४

मन फूला १ फिरै जगत में कैसा नाता रे।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहन कहै बिर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारी कहै नर मेरा॥
पेट पकर के माता रोवै बांह पकर के भाई।
लपटि झपट के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई॥
जब लग जीवै माता रोवै बहन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा॥
चार गजी चरगजी मंगायी चढा काठ की घोड़ी।
चारों कोने आग लगाई फूंक दियो जस होरी॥
हाड जरै जस लाकड़ी केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जर गई कोई न आयो पासा॥
घर की तिरिया ढूंढन लागी ढूंढ फिरि चहुं देसा।
कहे कबीर सुनो भाई साधो छाड़ी जग की आसा॥

५

बीती बहुत रही थोरी सी॥
खाट पड़े नर झींखन लागे, निकस प्राण गयो चोरीसी

भाई बंद कुटुम्ब सब आये, फूंक दियो मानो होरी सी
कहै कबीर सुनो भाई साधो सिर पर देत है भौंरी सी

६

करम गति टारी नाहीं टरी ॥ टेक ॥
मुनि वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरण मरण दशरथ को बन में विपत परी ॥
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बली पाताल धरी।
कोटि गाय नित्य पुण्य करत नृग गिरगट जोनि परी ॥
पाण्डव जिनके आप सारथी तिन पर बिपति परी।
दुर्योधन को गर्व घटायो जदुकुल नाश करी ॥
राहू केतू औ भानु चन्द्रमा बिधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही ॥

७

चलदिये प्राण काया रे कैसे रोई ॥ टेक ॥
काया पाय बहुत सुख कीन्हो, नित उठ मल२ धोई।
सो तन छिया छार ह्वे जै है, नाम न लै है कोई ॥
कहत प्राण सुन काया बोरी, मोर तोर संग न होई ॥
तोहि अस मित्र बहुत हम त्यागा, संग न लीन्हा कोई।
ऊसर खेत के कुसा मंगाये, चांचर चँवर के पानी ॥
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै, मुरदा कै महमानी ॥
शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, सेस सहस मुख होई।
जो जो जन्म लियो वसुधा पर, थिरन रह्यो है कोई ॥
पाप पुण्य है जन्म संघाती, समझ देखि नर लोई।
कहत कबीर अभि अन्तर की गति, जानत बिरला कोई ॥

८

हठरी छोड़ि चला बनजारा ॥ टेक ॥
इस हठरी बिच मानक मोती, कोई बिरला परखन हारा
इस हठरी के नौ दरवाजे दसवां ठाकुर द्वारा ॥
निकसि गई थंभी ढह परा मन्दिर, रलि गया चिक्कड़गारा
कहत कबीर सुनो भाई साधो झूठा जगत् पसारा ॥

९

बहुत दिनन में प्रीतम आये,
भाग भले घर बैठे पाये ॥ १ ॥
मंगल चार महा मन राखो,
नाम रसायन रसना चाखो ॥ २ ॥
मन्दिर महा भयो उजियारा,
ले सूती अपने पिय प्यारा ॥ ३ ॥
मैं निरास जो नौ निधि पाई,
कहा करौं पिय तुपरी बड़ाई ॥ ४ ॥
कहत कबीर मैं कछु नहीं कीन्हा,
सहज सुहाग पिया मोहि दीन्हा ॥ ५ ॥

१०

जय २ राज रामचन्द्र भक्तन हितकारी ॥ टेक ॥
महिमा अद्भुत अपार पावत नहीं कोई पार।
जगत् नाथ जगदाधार अवध के बिहारी ॥ १ ॥
शेष नारदादि आदि, वेद नावें वाद वाद
शारदादि आदि नाथ गावत त्रिपुरारी ॥ २ ॥
मोहन कर जोर २ विनवत नित भोर भोर।
कौशला किशोर मोर राखो लाज भार ॥ ३ ॥

समालोचना।

श्यामायन—ले० भक्तरत्न श्रीमथुरा प्रसाद जी रिटायर्ड जज जयपुर, मूल्य ॥) यह श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध के पूर्व के १८ अध्यायों का पद्यात्मक अनुवाद है। अनुवाद प्रत्येक श्लोक का क्रमशः है और राधेश्याम तथा तुलसी कृत रामायण दोनों प्रकार से गाया जा सकता है। भागवत् प्रेमियों को इससे लाभ उठाना चाहिये।